मूल्य 20 रुपये

चौथी दुनिया

दिल्ली रविवार 26 जुलाई 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

भीतर

3 आख़िर कैसे रुकेगी नक्सली हिंसा?

4 पंजाब में आत्महत्या की खेती

16 नहीं होने देंगे खाद्यान्न संकट : कृषि सचिव

संसद, सर्वोच्च न्यायालय और सबसे बड़ी सेक्स मंडी-II

मनीष कुमार

लगता है केंद्र सरकार को धारा 377 हटाने की जल्दबाज़ी है. दिल्ली हाईकोर्ट के फ़ैसले के बाद यह मामला सुप्रीम कोर्ट पहुंच चुका है. वैसे तो, नेता और अधिकारी कोर्ट में लंबित मामले पर अपनी ज़ुबान खोलने से बचते हैं, लेकिन धारा 377 के मामले में क़ानून मंत्री वीरप्पा मोइली तो बोले ही, गृह सचिव गोपाल कृष्ण पिल्लई ने भी इंटरव्यू देना शुरू कर दिया है. गृह सचिव का कहना है कि सरकार दिल्ली हाईकोर्ट के फ़ैसले के ख़िलाफ़ सुप्रीम कोर्ट नहीं जाएगी. इसकी वजह है कि राजनीतिक गलियारों से यह ख़बर आ रही है कि सरकार दिल्ली हाईकोर्ट के फ़ैसले से भी एक-दो क़दम आगे की सोच रही है. यानी सरकार ने धारा 377 को पूरी तरह से ही ख़त्म करने का मन बना लिया है. हैरानी की बात है कि विरोधी पार्टियों ने भी इस मामले पर चुप्पी साध ली है. यह चुप्पी आगे आने वाले दिनों में काफी ख़तरनाक साबित होने वाली है. धारा 377 के हटते ही भारत में वेश्यावृत्ति (महिला और पुरुष) को मानो लाइसेंस मिल जाएगा. इस धारा को हटाने का फ़ैसला महिला विरोधी भी है. इसलिए कि भारत की महिलाओं के हाथ से वह हथियार ही छिन जाएगा, जिसके ज़रिए वे अपने पति की मनमानी के ख़िलाफ़ क़ानून का सहारा ले सकती हैं. ऐसा लगता है कि भारतीय संसद और न्यायिक व्यवस्था जाने या अनजाने उन ताक़तों के हाथों भ्रमित कर दी गई है, जो ताक़त तीन खरब डॉलर की सेक्स इंडस्ट्री के पीछे है. दुनिया भर के कमज़ोर और उदार देशों में सेक्स की मंडी खोलने के बाद अब उनकी नज़र भारत पर टिकी है. इन ताक़तों को भारत में एक बड़ा सेक्स-बाज़ार नज़र आ रहा है.

उन्हें लगता है कि भारत एक कमज़ोर देश है, जहां कुछ भी संभव है. यही वजह है कि ये ताक़तें भारत को दुनिया का चौथे नंबर का सेक्स-बाज़ार बनाने की ताक में हैं. जिस तरह देश का सुप्रीम कोर्ट किसी व्यक्ति या संस्था को यह नोटिस देता है कि आपके ख़िलाफ़ अमुक आरोप हैं और क्यों न हम आपको दोषी समझ लें? यदि आप दोषी नहीं हैं तो उसकी सफाई दें. ठीक उसी तरह देश की जनता को भी क्या यह मान लेने का हक़ नहीं कि इस देश को चलाने वाले लोग और इस देश की न्यायिक व्यवस्था जाने-अनजाने इस साज़िश में शामिल है ? हमारे पास जो तथ्य हैं, वे इस संदेह को पुष्ट करते हैं.

भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के बारे में दिल्ली हाईकोर्ट के फ़ैसले से देश में एक नई बहस छिड़ गई है. इस मामले से जुड़े तथ्यों को हम पाठकों के सामने सिलसिलेवार तरीक़े से रख रहे हैं, ताकि सभी संबंधित पक्ष अपनी-अपनी सफाई पेश कर सकें. यक़ीन मानिए, अगर हमारे आरोप ग़लत साबित होते हैं, तो हमें बहुत ख़ुशी होगी. अदालत में चले इस मामले के पूरे ब्योरे पर नज़र डालते हैं, ताकि जनता को कम से कम यह तो पता चले कि सच्चाई क्या है.

> धारा 377 के मुद्दे पर समलैंगिकों के साथ खड़े होने वाले महिला विरोधी हैं. इसके हटते ही महिलाओं के हाथ से वह हथियार ही छिन जाएगा, जिससे वे पतियों की मनमानी के ख़िलाफ़ क़ानून का सहारा ले सकती हैं.

> ऐसा लगता है कि भारतीय संसद और न्यायिक व्यवस्था जाने या अनजाने उन ताक़तों के हाथों भ्रमित कर दी गई है, जो ताक़त तीन खरब डॉलर की सेक्स इंडस्ट्री के पीछे है. दुनिया भर के कमज़ोर और उदार देशों में सेक्स की मंडी खोलने के बाद अब उनकी नज़र भारत पर टिकी है. इन ताक़तों को यहां एक बड़ा सेक्स बाज़ार नज़र आ रहा है. उन्हें लगता है कि यहां कुछ भी संभव है. यही वजह है कि ये ताक़तें भारत को दुनिया का चौथे नंबर का सेक्स बाज़ार बनाने की ताक में हैं.

धारा 377, दिल्ली हाईकोर्ट का फ़ैसला और मीडिया की नासमझी

हाईकोर्ट के फ़ैसले में दो बातें ग़ौर करने लायक हैं. पहला, तो ख़ुद फ़ैसला है, जो क़ानून के उन बिंदुओं पर आधारित है, जो आईपीसी की धारा 377 की व्याख्या पर निर्भर है कि क्या यह धारा संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करती है? दूसरी ग़ौर करने की बात यह है कि मीडिया में जो बहस चल रही है, वह मुख्य तौर पर समलैंगिकता को लेकर सामाजिक धारणाओं (सामाजिक तौर पर स्वीकृति या अस्वीकृति) पर केंद्रित है, न कि क़ानून पर (आपराधिक या ग़ैर-आपराधिक) आधारित रही है. इस फ़ैसले ने मीडिया के खोखलेपन को भी उजागर किया है. टेलीविजन चैनलों पर छिड़ी बहस ने इस फ़ैसले को भारत में समलैंगिकता को वैध करार देने वाला फ़ैसला समझ लिया. इस बहस में शामिल हुए अधिकतर लोगों को तो इसकी जानकारी ही नहीं थी कि यह फ़ैसला किस मसले से संबंधित है. मीडिया में जिस पैमाने पर बहस चली और जिस तरह से बहस को मोड़ा गया, उसका नतीजा यह हुआ कि व्यावहारिक तौर पर देश के हरेक नागरिक को एक या दूसरे का पक्ष लेने को बाध्य किया गया. इस माहौल में यह कहने की ज़रूरत ही नहीं कि अधिकतर विचार तो अधकचरी सूचनाओं या विकृत सूचनाओं पर आधारित हैं. सही तो यह होगा कि इस मामले से संबंधित सारे सही तथ्यों को जनता के सामने रखा जाए, ताकि एक स्वस्थ और सूचना-आधारित बहस हो सके.

कोर्ट में दर्ज़ मामले और फ़ैसले के संदर्भ में तीन बिंदुओं को समझने की ज़रूरत है. 1. भारतीय दंड संहिता की धारा 377 असल में क्या कहती है? 2. इस बहस में कौन से समूह या व्यक्ति उलझे थे और उनका अलग-अलग तौर पर रुख़ क्या था? 3. और, दोनों पक्षों के तर्कों पर न्यायाधीश की क्या प्रतिक्रिया थी?

आईपीसी की धारा 377 असल में क्या है?

धारा की भाषा असल में कुछ इस तरह की है:-

अप्राकृतिक अपराध: जिसने भी अपनी मर्ज़ी से प्राकृतिक व्यवस्था के विपरीत किसी आदमी, औरत या जानवर के साथ शारीरिक संबंध बनाए, उसे उम्रक़ैद की सज़ा दी जाएगी, या दस वर्षों तक की क़ैद दी जाएगी और जुर्माना भी लगाया जाएगा.

व्याख्या: इस धारा में बताए अपराध के लिए शारीरिक संबंध बनाने का मतलब यौनांग के प्रवेश से है.

(शेष पृष्ठ 2 पर)

मामला और कालक्रम

सिविल रिट पिटिशन नं. 7455 ऑफ 2001, आईपीसी 377 के ख़िलाफ़ जनहित याचिका, नाज़ फाउंडेशन बनाम भारत सरकार

दिल्ली उच्च न्यायालय में 18-19 दिसंबर 1999 को याचिका दायर करने से पहले लॉयर्स कलेक्टिव एचआईवी/एड्स यूनिट (नाज़ फाउंडेशन के सलाहकार) ने मुंबई न्यायपालिका के लिए कार्यशाला आयोजित की. उसका विषय था-एचआईवी/एड्सः द लॉ एंड एथिक्स. इसके बाद लॉयर्स कलेक्टिव द्वारा दिल्ली और अहमदाबाद में भी दो कार्यशालाएं आयोजित की गईं, जिनका उद्देश्य न्यायपालिका में एचआईवी/एड्स से जुड़े क़ानूनी और नैतिक मुद्दों पर जागरूकता फैलाने और उन्हें बुनियादी तथ्यों के बारे में जानकारी देना था. इन कार्यशालाओं में दोनों शहरों के जजों की अच्छी-ख़ासी उपस्थिति रही. (इन कार्यशालाओं के बारे में पूरी जानकारी लॉयर्स कलेक्टिव एचआईवी/एड्स यूनिट की वेबसाइट पर उपलब्ध है)

- **दिसंबर 2001 :** रिट पिटिशन नं. 7455/2001 (नाज़ फाउंडेशन बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार और अन्य) दिल्ली उच्च न्यायालय में दायर (वकील- याचिकाकर्ताओं की ओर से आनंद ग्रोवर और दिव्या कपूर, प्रतिवादी 1 और 2 के लिए वी के शाली, प्रतिवादी 3 के लिए रमेश शर्मा और प्रतिवादी 4 और 5 के लिए मुकुल रस्तोगी (असिस्टेंट अटार्नी जनरल),जयंत भूषण, राजन दार्गन और मौलिक नानावती)
- **23 अप्रैल 2002 :** उच्च न्यायालय की दो सदस्यीय (न्यायमूर्ति देविंदर गुप्ता और एस मुखर्जी) खंडपीठ ने प्रतिवादियों को चार हफ़्तों के भीतर हलफनामे दायर करने के निर्देश ज़ारी किए (1. राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र की सरकार, 2. दिल्ली के पुलिस कमिश्नर, 3. दिल्ली राज्य एड्स नियंत्रण सोसाइटी, 4. राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नाको), 5(ए).गृह मंत्रालय, 5(बी). स्वास्थ्य मंत्रालय).
- **1 जुलाई 2002 :** जेएसीके (जैक) ने प्रतिवादी बनने के लिए आवेदन (संख्या आईए 9086/2002) दिया.
- **20 सितंबर 2002 :** जैक का आवेदन मंज़ूर
- **25 नवंबर 2002 :** जैक का हलफनामा दायर
- **6 सितंबर 2003 :** प्रतिवादी 5(ए) गृह मंत्रालय का हलफनामा दायर (अमन लेखी)
- **2 सितंबर 2004 :** उच्च न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय के विजय कुमार मुंद्रा बनाम भारतीय संघ और अन्य (आईएलपी(1972)2 दिल्ली 483) के मामले में दिए गए फ़ैसले के आधार पर याचिका ख़ारिज़ की. यह फ़ैसला जैक के वकीलों ने पीठ के समक्ष रखा था.
- **17 फरवरी 2005 :** नाज़ द्वारा एसएलपी 7217-7218/2005 सर्वोच्च न्यायालय में दायर
- **1 अप्रैल 2005 :** सर्वोच्च न्यायालय ने जैक को प्रतिवादी नं 6 के तौर पर शामिल करने का आदेश दिया (मुख्य न्यायाधीश सभरवाल और न्यायमूर्ति नावलेकर)
- **26 नवंबर 2005 :** एसएलपी में प्रतिवादी 5 का हलफनामा दायर
- **1 फरवरी 2006 :** प्रतिवादी 6. जैक का हलफनामा एसएलपी में दायर
- **3 फरवरी 2006 :** सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के तहत मामला उच्च न्यायालय में वापस
- **3 अप्रैल 2006 :** उच्च न्यायालय का सभी प्रतिवादियों को मामले की वापसी का ज्ञापन
- **17 जुलाई 2006 :** प्रतिवादी 4. नाको और प्रतिवादी 5(बी). स्वास्थ्य मंत्रालय की ओर से जवाब दाख़िल
- **28 अगस्त 2006 :** नाको का जैक की एमएसएम (मर्द-मर्द संबंध) के आंकड़ों से जुड़े आरटीआई आवेदन का जवाब
- **3 अक्टूबर 2006 :** जैक ने प्रतिवादी 4. नाको के जवाब पर प्रत्युत्तर दाख़िल किया
- **3 अक्टूबर 2006 :** जैक ने अतिरिक्त हलफनामा दायर किया
- **3 अक्टूबर 2006 :** नाज़ ने प्रतिवादी 5(बी)-स्वास्थ्य मंत्रालय-के हलफनामे पर प्रत्युत्तर दाख़िल किया
- **3 अक्टूबर 2006 :** नाज़ ने प्रतिवादी 6-जैक-के हलफनामे पर प्रत्युत्तर दाख़िल किया
- **4 अक्टूबर 2006 :** बीपी सिंहल को प्रतिवादी नंबर 7 और एनजीओ वायसेज अगेंस्ट 377 को प्रतिवादी नं. 8 के तौर पर शामिल करने का आदेश
- **2 अप्रैल 2007 :** पक्षों का संशोधित मेमो और नाज़ द्वारा संशोधित याचिका दाख़िल
- **19 मई 2008 :** नाज़ की याचिका पर दिल्ली उच्च न्यायालय में आख़िरी सुनवाई
- **7 नवंबर 2008 :** नाज़ की याचिका पर दिल्ली उच्च न्यायालय में आख़िरी सुनवाई पूरी (मुख्य न्यायाधीश शाह और न्यायमूर्ति मुरलीधर) और फ़ैसला सुरक्षित
- **2 जुलाई 2009 :** फ़ैसला सार्वजनिक

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

बाबुओं के लिए रक्षा कवच

चुनावों के बाद उत्तर प्रदेश में मेरे पसंदीदा बाबुओं के लिए ज़िंदगी आसान नहीं रही, क्योंकि मायावती ने अपना गुस्सा बाबुओं का बड़े पैमाने पर तबादला कर उतारा है. इसके अलावा चुनाव में हार के लिए उन्हें सार्वजनिक तौर पर फटकार भी लगाई.

ज़ाहिर तौर पर उन 40 वरिष्ठ बाबुओं के लिए बेहद ख़ुशनुमा बदलाव है, जिन्हें दो सप्ताह के प्रशिक्षण के लिए अमेरिका (ड्यूक) भेजा गया है. अब नौकरशाह यही उम्मीद कर रहे हैं कि यूपीए सरकार की वरिष्ठ अफसरों का कार्यकाल निश्चित करने की योजना फलीभूत हो. कई लोगों के मुताबिक केंद्र के प्रस्तावित विधेयक का मक़सद बाबुओं के अनुभव से लाभ उठाना ही है. इसके तहत राजनीतिक बदलाव और व्यक्तिगत भावनाओं से बचाने के लिए वरिष्ठ बाबुओं का कार्यकाल दो साल के लिए तय कर दिया गया है.
अब तक यह नियम केंद्र में लागू था, लेकिन अब राज्य में भी इसे लागू किया जाएगा.

महत्वपूर्ण रूप से, सिविल सर्विस बिल तबादले और नियुक्ति के कार्य के मापदंडों को प्रस्तावित करता है. हालांकि, इस प्रस्ताव के लिए इंतज़ार करना पड़ सकता है.

लालफीताशाही से बचें

हाल ही में राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने नौकरशाहों को करियर की शुरुआत में ही सीख देने की कोशिश की. मसूरी में आयोजित नेशनल अकेडमी के स्वर्ण जयंती समारोह के मौके पर राष्ट्रपति ने उन्हें लालफीताशाही वाली छवि से बचने के लिए कुछ ज़रूरी सलाह दी. राष्ट्रपति ने अपने भाषण में इस बात पर ज़ोर दिया कि सिस्टम से पैसा चुरा लिया जाता है, जिसके चलते लोगों तक पूरा लाभ नहीं पहुंच पाता है. इसलिए राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने प्रशिक्षु आईएएस अधिकारियों को सलाह दी कि वह इस रवैए को ज़रूर बदलें और संसाधनों का उपयोग उनके उद्देश्य के अनुरूप ही हो. उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि बाबुओं का काम विकास आधारित और व्यवहार मित्रवत हो. हम आशा करते हैं कि राष्ट्रपति द्वारा कहे गए ये शब्द बदलाव के लिए महत्वपूर्ण साबित हों.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

बिश्नोई बनेंगे संयुक्त सचिव

अनुज कुमार बिश्नोई को बहुत जल्द नई ज़िम्मेदारी मिलने वाली है. वह उत्तर प्रदेश काडर के 1981 बैच के आईएएस अधिकारी हैं. बिश्नोई बहुत जल्द ही भारत सरकार के किसी मंत्रालय में संयुक्त सचिव या उसके समकक्ष के रूप में कार्यभार संभाल सकते हैं.

गोपीनाथ का स्थान लेंगे रंगाचार्य जया

रंगाचार्य जया, जो तमिलनाडु काडर के 1995 बैच के आईएएस अधिकारी हैं, को जल्द ही गृह मंत्रालय में निदेशक का कार्यभार मिलने वाला है. रंगाचार्य, बी वी गोपीनाथ (आईआरएस, आईटी:1987) का स्थान लेंगे. ग़ौरतलब है कि गोपीनाथ का कार्यकाल मई 2009 में समाप्त हो गया.

लोक रंजन की तरक़्क़ी

लोक रंजन (आईएएस अधिकारी) राजस्व विभाग में निदेशक हैं. बहुत जल्द उनकी तरक़्क़ी राजस्व विभाग में ही संयुक्त सचिव के पद पर होने वाली है. वह ललित कुमार गुप्ता(आईएएस अधिकारी) के स्थान पर संयुक्त सचिव का कार्यभार संभालेंगे.

संसद, सर्वोच्च न्यायालय और सबसे बड़ी सेक्स मंडी-II

पृष्ठ एक का शेष

कोर्ट के मामले में कौन से पक्ष शामिल थे और उनका रुख़ क्या था?

2001 में आईपीसी की धारा 377 के विरोध में नाज़ फाउंडेशन नाम की ग़ैरसरकारी संस्था ने मामला दायर किया था. नाज़ फाउंडेशन ने दलील दी कि एचआईवी को रोकने के उनके प्रयासों को धारा 377 की वजह से नुक़सान पहुंच रहा है. तर्क यह दिया गया कि मर्द के साथ सेक्स करते मर्द (एमएसएम) एचआईवी/एड्स के लिहाज से हाई रिस्क ग्रुप में आते हैं, जो धारा 377 की वजह से अपनी पहचान ज़ाहिर नहीं करते. यह धारा उनको अपराधी बनाती है और इसी वजह से उनको स्वास्थ्य-सुविधाओं का लाभ नहीं मिल पाता. उनकी दलील है कि धारा 377 दो वयस्कों के बीच निजी तौर पर यौनक्रिया को भी आपराधिक कृत्य ठहराती है और इसीलिए संविधान के अनुच्छेद 14,15, 19 और 21 में बताए गए मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती है. आईपीसी की धारा 377 दो सहमत और साझीदार लोगों के बीच यौनक्रिया को आपराधिक बताकर मौलिक अधिकारों का दमन करती है. 2001 में दिल्ली हाईकोर्ट ने इस मामले को अकादमिक बता कर सुनने से ही इंकार कर दिया था.

इस केस में कई सरकारी और ग़ैरसरकारी संस्थाओं को प्रतिवादी बनाया गया.

नाको (नेशनल एड्स कंट्रोल आर्गनाइज़ेशन) ने स्वास्थ्य मंत्रालय के साथ मिलकर 17 जुलाई 2006 को एक जवाबी हलफनामा दायर किया. यह याचिका दायर करने के पांच साल बाद किया गया, वह भी तब, जब सुप्रीम कोर्ट ने मामले को वापस हाईकोर्ट में भेज दिया था. नाको ने मुख्य तौर पर उन रणनीतियों की बात की, जो एचआईवी रोकने के लिए उसने बनाई थी. इसमें एमएसएम (मर्द के साथ मर्द का सेक्स) ग्रुप में हस्तक्षेप की रणनीति भी थी, जो नाको के मुताबिक अधिक ख़तरे वाले समूहों में से एक है. नाको ने अपने आंकड़ों के ज़रिए यह बताया कि एमएसएम में एचआईवी का ख़तरा आठ फ़ीसदी तक है, जबकि सामान्य जनसंख्या में यह महज़ एक फ़ीसदी है. इस तरह नाको के मुताबिक धारा 377 इस आबादी में एचआईवी रोकने की राह में रोड़ा साबित हो रही है. यानी, नाको की दलील ने याचिकाकर्ता का समर्थन किया.

जैक (ज्वाइंट एक्शन काउंसिल, कन्नूर) ने एमएसएम समूह में एड्स का ख़तरा होने के नाको के आंकड़ों को चुनौती दी, क्योंकि वही उन एनजीओ द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे थे, जिनको एचआईवी रोकने का काम दिया गया है. अपने फंड को लगातार बनाए रखने में उनके स्वार्थ निहित हैं, और इसी वजह से वे आंकड़ों में घालमेल कर सकते हैं. दूसरी बात, ये आंकड़े 2006 में जुटाए गए थे, याचिकाकर्ता के कोर्ट में जाने के पांच वर्षों बाद. इसका मतलब यह है कि जिस समय नाज़ फाउंडेशन ने यह दलील दी थी, तब तक ऐसी कोई स्टडी या रिसर्च नहीं था जिससे साबित किया जा सके कि एमएसएम सचमुच एक हाई रिस्क ग्रुप है. यह तो मामला दर्ज़ करने के बाद सबूत बनाने सरीखा है.

गृह मंत्रालय ने याचिका दायर करने के दो साल बाद 6 सितंबर 2003 को जवाबी हलफनामा दायर किया. गृह मंत्रालय ने याचिका का विरोध इस आधार पर किया कि याचिकाकर्ता ने ऐसे क़ानून को चुनौती दी है, जिसकी वजह से उसे कहीं भी नुक़सान नहीं उठाना पड़ा है. कोई दूसरा नुक़सान उठा सकता है, यह वजह याचिका दायर करने की नहीं हो सकती है. गृह मंत्रालय ने कहा कि जनहित याचिका का लक्ष्य न्यायिक प्रक्रिया का इस्तेमाल कर प्रशासनिक ज़िम्मेदारी तय करना है. इसका इस्तेमाल किसी क़ानून की वैधानिकता पर सवाल उठाने के लिए नहीं किया जा सकता. धारा 377 को किसी मामले के तथ्यों की रोशनी में ही समझा और व्याख्यायित किया जा सकता है. इसकी वजह यह कि दंडात्मक विधानों में ख़ासतौर पर कोर्ट को किसी भी क़ानून की व्याख्या करने का अधिकार उसके मौजूदा मायने के तहत है. गृह मंत्रालय ने आगे कहा कि रज़ामंदी का मामला अप्रासंगिक है. यह एक स्थापित सिद्धांत है कि कोई भी ग़ैरक़ानूनी अधिकार इस वजह से क़ानूनी नहीं हो जाता, क्योंकि दोषी या शिकार आदमी की इसमें सहमति है. साथ ही, निजता का अधिकार भले ही अविवादित है, लेकिन सार्वजनिक सुरक्षा और स्वास्थ्य के लहजे से सार्वजनिक अधिकारी को हस्तक्षेप का भी उतना ही अधिकार है.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

आईपीसी की धारा 377 के तहत दर्ज़ मामलों का अध्ययन बताता है कि यह केवल शिकारों के बयान पर ही दाख़िल किया गया. ऐसा कोई उदाहरण देखने को नहीं मिला, जब इसे अराजक तरीक़े से या उन हालात में लागू किया गया, जहां प्राकृतिक तौर पर इसकी गुंजाइश नहीं थी. ऊपर बताए गए समूह (एमएसएम) को अगर इस तरह की छूट दी गई, तो विकारग्रस्त व्यवहार की तो बाढ़ ही आ जाएगी. गृह मंत्रालय ने यह भी कहा कि धारा 377 किसी भी तरह अनुच्छेद 14, 15, 19 या 21 का उल्लंघन नहीं करती.

जैक (ज्वाइंट एक्शन काउंसिल, कन्नूर) ने रिट याचिका के दाख़िल होते ही हस्तक्षेप की अर्जी दी, जिसके बाद उसे हाईकोर्ट ने 20 सितंबर 2002 को हस्तक्षेप की अनुमति दे दी. जैक ने अपनी आपत्ति इस आधार पर दायर की थी कि याचिकाकर्ता ने बिना किसी सबूत या ख़ास नुक़सान के क़ानून की वैधता को चुनौती दी है. याचिकाकर्ता ने इस बात का कोई सबूत पेश नहीं किया कि धारा 377 एचआईवी को रोकने में बाधक बन रही है, या फिर एमएसएम समूह एड्स के मामले में कोई हाई रिस्क ग्रुप है. इसी तरह कोई सबूत इस बात का भी पेश नहीं किया गया कि धारा 377 ने दो रज़ामंद वयस्कों के निजी में बनाए यौन-संबंधों को मामला बनाया. इसका मतलब यह है कि याचिका कही-सुनी बातों पर आधारित है.

इन सभी बातों के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि एचआईवी रोकने के नाम पर धारा 377 के विरोध में चलाया जा रहा आंदोलन और कुछ नहीं, बल्कि सेक्स को संस्थागत बनाने और देश में एक ताक़तवर सेक्स इंडस्ट्री स्थापिक करने का उपाय है. दो सितंबर 2004 को हाईकोर्ट ने नाज़ की याचिका को ख़ारिज़ कर दिया था. इसके बाद दिल्ली हाईकोर्ट में ही याचिकाकर्ता ने एक रिव्यू पिटिशन दाख़िल किया. उसको भी ख़ारिज़ कर दिया गया. 17 फरवरी 2005 को सुप्रीम कोर्ट में फिर से नाज़ ने याचिका दी कि मामला तकनीकी आधार पर ख़ारिज़ किया गया है, और मामले को पूरी तरह से समझा ही नहीं गया. इसके बाद तीन फरवरी 2006 को सुप्रीम कोर्ट ने मामले को फिर से हाईकोर्ट में ही वापस भेज दिया. जिसका फ़ैसला 2 जुलाई 2009 को सार्वजनिक किया गया.

कोर्ट के फ़ैसले के आते ही मीडिया में बहस छिड़ गई. लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि समलैंगिकता अब ग़ैरकानूनी नहीं है. कुल मिलाकर बात यह है कि एड्स के क्षेत्र में काम करने वाले एक ग़ैरसरकारी संगठन ने अपने निहित स्वार्थ के लिए 377 के ख़िलाफ़ मुहिम छेड़ी. ऐसी-ऐसी दलीलें दीं जिसे हाईकोर्ट ने सही मान लिया. कोर्ट के फ़ैसले को लेकर भी कई भ्रांतियां फैल गई हैं. असलियत यह है कि कोर्ट ने सिर्फ़ यह कहा कि निजी तौर पर अगर दो वयस्क की रज़ामंदी से सेक्स करते हैं तो वह अपराध नहीं है. लेकिन कोर्ट ने गे मैरिज की छूट नहीं दी है. यह सिर्फ़ एक अंतरिम आदेश है और सिर्फ़ दिल्ली में लागू होगा.

इस फ़ैसले से एक अजीबोग़रीब स्थिति पैदा होती है. वह यह कि बिना शादी किए दो पुरुष आपसी सहमति से समलैंगिक संबंध बना सकते हैं, लेकिन अगर यही काम कोई मर्द किसी औरत के साथ करना चाहे तो उसे अवैध करार दिया जाएगा.

इसमें कोई शक़ नहीं है कि इस क़ानून के ख़त्म होते ही पुरुष वेश्यावृत्ति को खुली छूट मिल जाएगी. उन ताक़तों को मौका मिल जाएगा जो पूरी दुनिया में सेक्स का बाज़ार चलाते हैं. इस क़ानून के ख़त्म होते ही उन लोगों को भी ताक़त मिलेगी जो देश में वेश्यावृत्ति को वैध बनाने के पक्षधर हैं.

समझने वाली बात यह है कि धारा 377 बहुत ही कारगर साबित हुई. क़रीब 130 वर्षों से इस क़ानून ने देश से समलैंगिकता के दुष्परिणामों को दूर रखा है. यह माना जाता है कि समलैंगिकों की प्रवृत्ति सामूहिक सेक्स और कई पार्टनर के साथ यौन संबंध बनाने की होती है और इस तरह के संबंध तो शारीरिक स्तर पर भी शिकार को नुक़सान पहुंचाते हैं. धारा 377 के ख़त्म होने से समलैंगिक पुरुष अब सामने आएंगे और पहले की तुलना में अब उन्हें नए पार्टनर आसानी से मिलेंगे. इससे एड्स के ज़्यादा तेज़ी से फैलने का ख़तरा बढ़ जाएगा.

यह बात भी सही है कि केवल संसद ही नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था, भद्रता वग़ैरह को ध्यान में रखकर क़ानून में बना सकती है या बदलाव कर सकती है. यह भी तय है कि हरेक क़ानून सार्वजनिक और सामाजिक हित को ध्यान में रखकर बनाया जाता है, जबकि मौलिक अधिकार व्यक्ति के हित को ध्यान में रखकर. लेकिन सरकार चुप है, विरोधी पार्टियां चुप हैं, हमेशा बोलने वाले नेता चुप हैं. धारा 377 पर हमें इनके बोलने का इंतज़ार है. देखना तो यह है कि घारा 377 पर सरकार का अगला क़दम क्या होने वाला है. इस बीच, हम यहां जनता की तरफ़ से देश को चलाने वालों को यह नोटिस देते हैं कि कोर्ट के बाहर धारा 377 पर चल रही बहस पर अपना मत जनता के सामने साफ करें.

manish .chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 19, 20-26 जुलाई 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

आख़िर कैसे रुकेगी नक्सली हिंसा?

तारीख़ : 25 मई 1967.
स्थान : नक्सलबाड़ी, पश्चिम बंगाल. बंगाल पुलिस की गोलीबारी में दो बच्चों सहित 11 किसानों की मौत. देश में नक्सलवाद के नाम से ख़ूनी अतिवामपंथी हिंसा की शुरुआत.

तारीख़ :12 जुलाई 2009.
स्थान : मानपुर, सीमागांव, छत्तीसगढ़. माओवादियों के हमले में राजनांदगांव जिले के एसपी सहित 35 पुलिसकर्मी शहीद.

बिमल राय

इस तरह अब तक 42 सालों का समय बीत गया और नक्सलवाद जैसे कश्मीर समस्या बन गया है. कभी किसानों के हित के लिए तो कभी आदिवासियों को उनका हक़ दिलाने के नाम पर तरह-तरह के संगठन बनाकर ख़ूनी खेल खेल रहे हैं ये अतिवादी वामपंथी. उत्तर बंगाल के एक छोटे से गांव नक्सलवाड़ी से पैदा हुआ यह सशस्त्र विद्रोह आज भारत के 40 फ़ीसदी हिस्से को अपनी गिरफ़्त में ले चुका है. ख़ून से सनी धरती का घेरा 92 हज़ार वर्ग किलोमीटर तक पहुंच गया है. रॉ के मुताबिक वर्तमान में नक्सली गतिविधियों में 20 हज़ार उपद्रवी शामिल हैं. कथित तौर पर भूखों के लिए लड़ने वाले ये नक्सली ख़ुद ख़ून से अपनी प्यास बुझा रहे हैं. बीबीसी के मुताबिक ख़ूनी खेल में अब तक क़रीब 6000 जानें जा चुकी हैं.

बात 1967 की है. तब बंगाल में प्रफुल्ल चंद्र घोष की मिलीजुली सरकार थी. उसमें गृह मंत्रालय के प्रभार के साथ उप मुख्यमंत्री थे ज्योति बसु. नक्सलबाड़ी में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से अलग होकर चारू मजूमदार और कानू सान्याल ने सशस्त्र विद्रोह की शुरुआत की. 25 मई 1967 को नक्सलबाड़ी में भूमि विवाद के बाद एक ज़मींदार के भाड़े के लोगों ने एक किसान पर हमला किया. किसानों ने एकजुट होकर ज़मींदारों से लोहा लेना शुरू किया. फिर बंगाल पुलिस की पलटन ने 11 किसानों को मौत के घाट उतार दिया. यहीं से नक्सलवाद की चिंगारी भड़की, जो आज देश की सबसे ख़तरनाक समस्या बन गई है. माओ जेदांग से प्रभावित चारू मजुमदार ने किसानों का आह्वान किया कि वे सरकार और ऊंची जातियों के दबदबे वाली राजनीतिक व्यवस्था को पलट दें. उसी साल नक्सलियों की आल इंडिया को-आर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्युनिस्ट रिवोल्युशनरीज (एआईसीसीआर) का गठन हुआ. इसी संगठन से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) पैदा हुई. उत्तर बंगाल से उठी चिंगारी कोलकाता के छात्र आंदोलन के रूप में धधक उठी. चारू का मानना था कि केवल ज़मींदार ही नहीं, बल्कि विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों, पुलिस अफसरों, राजनेताओं जैसे वर्ग शत्रुओं के ख़िलाफ़ भी हथियार उठाकर ख़ूनी आंदोलन को बड़ा रूप दिया जाए. सबसे पहले नक्सलियों ने जादवपुर विश्वविद्यालय पर क़ब्ज़ा कर लिया. ऐसा कहा जाता है कि नक्सलियों ने ही जादवपुर विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर डॉ. गोपाल सेन की हत्या कर दी. कोलकाता में नक्सली आंदोलन के भड़कते ही तत्कालीन मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर राय (1972 से 1977 तक) ने कड़े हाथों से इस ख़ूनी खेल को रोका. इसके बाद नक्सलियों का प्रसार दूसरे राज्यों में होने लगा.

वर्तमान में जो भी नक्सली गुट सक्रिय हैं, वे सभी भाकपा-माले से ही निकले हैं. दक्षिण में इस ग्रुप ने माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर बना लिया. बाद में एमसीसी का पीपुल्स वार ग्रुप में विलय हो गया और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) का जन्म हुआ. 1970 के दशक में नक्सली आंदोलन बिखर गया. 1980 तक 30 नक्सली संगठनों के कुल 30 हज़ार काडरों के सक्रिय होने का अनुमान था. 2004 में केंद्रीय गृह मंत्रालय का अनुमान था कि देश में 9300 हार्डकोर नक्सली भूमिगत होकर ख़ूनी गतिविधियां चला रहे हैं, हालांकि 2006 में रॉ का अनुमान 20 हज़ार के आसपास का था.

नक्सली समस्या के हल के लिए सिद्धार्थ शंकर राय ने कुछ वैसा ही तरीक़ा अपनाया था, जो केपीएस गिल ने पंजाब में खालिस्तानियों को कुचलने के लिए किया था. बिहार, झारखंड और उड़ीसा की सरकारों ने पारंपरिक सुरक्षा बलों के बूते ही नक्सली हिंसा को कुचलने की कोशिश की. सबसे पहला प्रयोग छत्तीसगढ़ में हुआ. छत्तीसगढ़ में 2005 में सलवा जुड़ूम के नाम से आदिवासियों को नक्सलियों के ख़िलाफ़ खड़ा किया गया. आदिवासी युवकों को प्रशिक्षण देकर उन्हें स्पेशल पुलिस अफसर बनाया गया. उन्हें 3300 रुपये मासिक वेतन दिया गया. इसका मक़सद आदिवासियों को नक्सलियों के ख़िलाफ़ खड़ा करना था. हालांकि नक्सलियों की बदले की कार्रवाई जारी रही. 2005 से 2008 तक देश में नक्सली हिंसा की 65 प्रतिशत वारदातें केवल छत्तीसगढ़ और पड़ोसी राज्य झारखंड में हुईं. पांच फरवरी 2009 को छत्तीसगढ़ सरकार ने स्वीकार किया कि राज्य में सलवा जुड़ूम का असर धीरे-धीरे ख़त्म हो रहा है. 2005 से शुरू हुए इस आंदोलन में नक्सलियों ने 300 सुरक्षाकर्मियों सहित कुल 800 लोगों को मौत के घाट उतार दिया. इनमें स्पेशल पुलिस अफसरों की तादाद 90 थी. हालांकि इसके पहले 1991 में कांग्रेस नेता महेंद्र कर्मा ने नक्सलियों के ख़िलाफ़ जन-जागरण अभियान शुरू किया, पर यह अभियान भी नक्सलियों की ताक़त के आगे ढेर हो गया. ह्युमन राइट वाच के मुताबिक, नक्सलियों और सलवा जुड़ूम कॉडरों के बीच संघर्ष में 2008 के छह महीनों में ही दांतेवाड़ा व आसपास के नक्सल प्रभावित जिलों के डेढ़ लाख लोग विस्थापित होकर आंध्र सीमा के पास शरण ली. फरवरी 2009 में सरकार ने नक्सल प्रभावित आठ राज्यों में एक साथ समन्वित तरीक़े से ऑपरेशन शुरू किया, ताकि नक्सलियों के भागने के रास्ते बंद किए जा सकें. दस हज़ार करोड़ का बजट प्रावधान रखा गया. सरकारी कोशिशों के तहत सुरक्षा बलों का अभियान जारी रहा और नक्सली हिंसा भी. सीपीआई-एमएल, पीपुल्स वार ग्रुप और माओइस्ट कम्युनिस्ट सेंटर के विलय के बाद 21 सितंबर 2004 में बने इस संगठन के कथित जन सशस्त्र में अब तक हज़ारों लोग मारे जा चुके हैं. केंद्र ने सीपीआई-माओवादी पर पाबंदी लगा दी है. झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा और आंध्रप्रदेश सरकारों ने बहुत पहले से इस संगठन पर पाबंदी लगा रखी है, पर लालगढ़ में सुरक्षा बलों का संयुक्त अभियान शुरू होने के तुरंत पहले बंगाल सरकार ने भी आख़िरकार इस पर पाबंदी लगा दी. हालांकि, पाबंदी के बाद राज्यों ने संगठन के बैंक खातों को ज़ब्त कर लिया और उनके बड़े नेताओं की अचल संपत्ति सील कर दी. इस पाबंदी की जद में वे लोग भी आते हैं, जो किसी न किसी रूप में माओवादियों को पनाह देते हैं और उनकी मदद करते हैं. पर, लालगढ़ और छत्तीसगढ़ में उफनी हिंसा से साबित हो गया है कि इन कड़े क़दमों का माओवादियों पर कोई असर नहीं पड़ रहा है. नक्सली हिंसा से अकेले छत्तीसगढ़ में 2006 से अब तक 500 लोग मारे गए हैं. इनमें से ज़्यादातर सुरक्षाबल और आम जनता ही रही है. पाबंदी लगाने से मक़सद हासिल नहीं हो सका है तो इसकी वजह है कि माओवादी भूमिगत रहकर ही अपना काम करते हैं. फिर गिरफ़्तारी के बाद गवाह के अभाव में उनको सज़ा नहीं हो पाती. ज़्यादातर मामलों में पुलिस उन्हें माओवादी साबित नहीं कर पाती. आंध्र जैसे राज्य ने नक्सलियों के ख़िलाफ़ पुलिस को व्यापक अधिकार दिए और उसने आंध्र प्रदेश पब्लिक सिक्योरिटी एक्ट के तहत पाबंदी लगाई है. पर सवाल उठता है कि जो पैसा नक्सली हिंसा को रोकने के लिए ख़र्च किया जाता है, अगर उसका आधा हिस्सा भी प्रभावित इलाक़े के विकास के लिए निर्धारित राशि में जोड़ दी जाए तो तस्वीर काफी बदल सकती है. हम लालगढ़ की मिसाल लें. लालगढ़ में केंद्रीय बलों की 26 और राज्य सरकार की 24 कंपनियां अभियान में लगी हैं. केंद्रीय बलों का दैनिक भत्ता व गोली-बारूद का ख़र्च केंद्र ही उठाता है. पूरे अभियान पर हर दिन 12.5 लाख रुपये का ख़र्च आ रहा है. इस ख़र्च में बंगाल सरकार का हिस्सा क़रीब 11 लाख है. 10 जुलाई तक 22 दिनों में राज्य के ख़ज़ाने से क़रीब ढाई करोड़ रुपये निकल चुके थे. राज्य सरकार पूरे जुलाई तक सुरक्षा बलों की तैनाती चाहती है. इस तरह मोटे अनुमान के मुताबिक, सरकार पर 44 दिनों में करीब पांच करोड़ रुपये का बोझ पड़ेगा. इस अभियान के कारण प्रभावित इलाक़ों में रोजी-रोटी सब ठप है. इस क्षति को भी जोड़ा जाए, नुक़सान कहीं अधिक बैठता है. इस तरह पैसे का यूं ही जाया होना देखा जा सकता है.

देश के नक्सल प्रभावित राज्यों की सरकारी सूची

झारखंड :	गुमला, लोहरदगा, पूर्व सिंहभूम, पश्चिम सिंहभूम, गढ़वा, पलामू, लातेहार, चतरा, हजारीबाग, बोकारो.
छत्तीसगढ़ :	कांकेड़, सरगुजा, राजानांदगांव, दांतेवाड़ा, बीजा-पुर, बस्तर, नारायणपुर
मध्यप्रदेश :	बालाघाट.
आंध्रप्रदेश :	खम्माम.
बिहार :	रोहतास, जहानाबाद, औरंगाबाद, गया, अरवल और जमुई.
उड़ीसा :	देवगढ़, गजपति, संबलपुर, रायगढ़ व मलकानगिरी.
महाराष्ट्र :	गढ़चिरौरी.
उत्तर प्रदेश :	गोंडा व सोनभद्र.

पिछले साल दिसंबर में गृह मंत्रालय में इन 33 जिलों को सर्वाधिक नक्सल प्रभावित जिले के रूप में मार्क किया गया. इनमें उड़ीसा का कंधमाल और पश्चिम बंगाल के चार जिलों-पश्चिम मेदिनीपुर, पूर्व मेदिनीपुर, पुरुलिया और बांकुड़ा के नाम शामिल नहीं थे.

नक्सली हिंसा व कार्रवाइयों में हुईं मौतें

वर्ष 1996	156 मौतें
वर्ष 1997	428 मौतें
वर्ष 1998	270 मौतें
वर्ष 1999	363 मौतें
वर्ष 2000	50 मौतें
वर्ष 2001	100 मौतें
वर्ष 2002	140 मौतें
वर्ष 2003	451 मौतें
वर्ष 2004	500 मौतें
वर्ष 2005	892 मौतें
वर्ष 2006	749 मौतें
वर्ष 2007 सितंबर तक	384 मौतें
वर्ष 2008	938 मौतें
वर्ष 2009 जून तक	1128 मौतें

2009 में आम चुनावों के पहले चरण में 16 अप्रैल को बिहार, छत्तीसगढ़ और झारखंड में 18 नागरिकों की हत्या की गई. मई 2009 में झारखंड में ही माओवादी हमले में 16 पुलिसकर्मियों की मौत हो गई. गृह राज्य मंत्री अजय माकन के मुताबिक, इस वर्ष जून तक नक्सली हिंसा की 1128 वारदातें हुईं, जिनमें 455 नागरिक और सुरक्षा बल मारे गए. इस दौरान 107 नक्सली मार गिराए गए और 861 गिरफ़्तार किए गए. 13 जुलाई को छत्तीसगढ़ के मानपुर व सीतागांव में नक्सली हमलों में एक एसपी सहित 36 पुलिसवाले शहीद.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

हिंसा समाधान नहीं हो सकती : कानू सान्याल

नक्सली आंदोलन शुरू करने वालों में से एक कानू सान्याल हैं. वह पिछले एक साल से बीमार चल रहे हैं. उनका ज़्यादा समय नक्सलबाड़ी स्थित घर में ही बीतता है, पर राज्य की माओवादी गतिविधियों से वह अभी भी एकदम अलग-थलग नहीं हैं.

आप नक्सल आंदोलन के जनक नेताओं में से एक रहे हैं. तब से अब तक के आकलन से क्या ऐसा लगता है कि आप लोगों ने जिस मक़सद से राजसत्ता के ख़िलाफ़ जंग छेड़ी थी, वह हासिल हो गया है?

देखिए, हमारा मक़सद था किसानों के हितों की रक्षा करना, भूमिहीनों को भूमि दिलवाना और सीमांत आदमी तक को विकास की छतरी के तले लाने के लिए राजसत्ता को मजबूर करना. पर हमने देखा कि समाज का एक वर्ग ही मलाई खा रहा है, हमारा शोषण कर रहा है. उलटे हम पर गोलियां चला रहा है.

1977 में सत्ता में आने के बाद से बंगाल की वाममोर्चा सरकार ने कुछ अच्छे काम तो किए, ख़ासकर भूमि सुधारों के मामले में ?

हां, लोग तो यही जानते हैं. पर वाममोर्चा सरकार ने वादे के बावजूद नक्सलियों को माफ़ी नहीं दी. हमें आंध्र प्रदेश की जेलों में अवैध रूप से रखा गया. हम लोग आंध्र हाई कोर्ट की शरण में गए और हमने क़ानूनी लड़ाई जीती. हां, शुरू-शुरू में सरकार ने कुछ अच्छे काम किए. भूमिहीनों को ज़मीन दी गई. पर, आज आप देखिए. पिछले दस सालों से उनका रुख़ एकदम जनविरोधी हो गया है. सर्वहारा के हितों के लिए लड़ने वाले इन नेताओं के पास गाड़ी-बाड़ी सब हो गया है.

अभी सरकार लालगढ़ में माओवादियों के सफाए का अभियान चला रही है. क्या आप मानते हैं कि वहां भी लोगों में असंतोष सरकारी उपेक्षा का नतीजा है?

बिल्कुल. वहां निर्दोष लोगों पर पुलिस ने जुल्म किए हैं. वहां विकास नहीं हुआ है. सरकारी विकास योजनाओं का लाभ सत्ताधारी वर्ग के लोगों तक ही पहुंचा है.

केंद्र ने सीपीआई (माओवादी) पर पाबंदी लगा दी है. राज्य सरकार ने माओवादियों को आत्मसमर्पण करने को कहा है. क्या यह अच्छा नहीं होगा कि काडर हिंसा छोड़ कर राष्ट्र की मुख्यधारा में आएं?

पाबंदी से कितना फ़ायदा हुआ है, आप पहले भी देख चुके हैं. रातोरात संगठनों का नाम बदल जाता है. सबसे ज़रूरी है भूख, ग़रीबी और पिछड़ेपन को दूर करना. और केंद्र की बात क्या कहें, इस कांग्रेसी शासन में डीजल, पेट्रोल के साथ सारी चीज़ें महंगी हो गई हैं. आम जनता त्राहि-त्राहि कर रही है.

दा, क्या हिंसा से मक़सद हासिल करना संभव है?

मैं भी मानता हूं कि हिंसा समाधान नहीं है.

पंजाब में आत्महत्या की खेती

अपने बेटों की तस्वीरें दिखाते संदूरा सिंह (बीच में) और दर्शन सिंह (दाएं)

जसपाल कौर

आधुनिक खेती, कृषि आगतों की बढ़ती क़ीमतें, कीटनाशक और रासायनिक खादों के दंश ने पंजाब की खेती में ज़हर घोल दिया है. इसकी विषबेल किसानों की मौत का कारण बन रही है. हरित क्रांति के बूते देश के खाद्यान्न भंडार में अकूत अनाज भर देने वाले पंजाब में आत्महत्याओं का दौर चल पड़ा है. ग़रीबी, क़र्ज़, आर्थिक तंगी और घाटे की खेती से जूझ रहे पंजाब के हर जाति, हर वर्ग के किसान और कृषि मज़दूर मौत को गले लगा रहे हैं. यह तस्वीर ऐसे समय में उभर रही है, जब हरित क्रांति के 40 साल पूरे हो चुके हैं और सरकार दूसरी हरित क्रांति की बात कर रही है. बठिंडा से तलवंडी की ओर जाते हुए क़रीब 15 किलोमीटर का सफ़र तय करने पर कोरसमीर नाम का गांव है. मुख्य सड़क पर ही दो भाइयों संदूरा सिंह और दर्शन सिंह का संयुक्त परिवार रहता है. घर में प्रवेश करने पर खूंटे से बंधी गाय-भैंसें, बड़ा सा घर-आंगन देखकर पहली नज़र में एक खाए-अघाए परिवार की तस्वीर उभर कर आती है. लेकिन शांत से दिखने वाले इस चौबारे में रहने वालों की आंखों में आंसुओं का सैलाब भरा था. घाटे की खेती, कीटनाशकों और ट्रैक्टर के क़र्ज़ ने संदूरा सिंह और दर्शन सिंह के जवान बेटों को ही नहीं छीना, बल्कि उनकी 12 कीले ज़मीन भी क़र्ज़ की भेंट चढ़ गई. इस ज़मीन पर वे गेहूं और कपास की खेती करते थे. आठ सालों में संदूरा सिंह के घर में दो आत्महत्याएं हो चुकी हैं. 10 अगस्त 2008 को उनके 29 वर्षीय बेटे भोला सिंह ने कीटनाशक पीकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर ली. नौजवान बेटे की तस्वीर देखते ही संदूरा सिंह अपने आंसू नहीं रोक पाते और फफक कर रो पड़ते हैं. इससे पहले 15 अगस्त 2001 में दर्शन सिंह के 18 वर्षीय बेटे गुरप्रीत सिंह ने भी क़र्ज़ के बोझ और आत्मसम्मान खोने के भय से ख़ुदकुशी कर ली थी. बकौल दर्शन सिंह, पिछले कई सालों से नरमा (कपास) की पैदावार ठीक नहीं हो रही थी. नहर में पानी नहीं है और ज़मीन का पानी खारा है, इसलिए सिंचाई की समस्या है. बरसात कभी तो फ़सल को डुबो देती है, तो कभी फ़सलों को सूखा अपनी चपेट में ले लेता है. बकौल दर्शन सिंह, 2001 में भी ज़्यादा बारिश के कारण नरमा मर गया, जिसकी क़ीमत उनके बेटे को जान देकर चुकानी पड़ी.

केंद्र सरकार द्वारा किसानों के क़र्ज़ माफी योजना का लाभ इन लोगों को नहीं मिला है. संदूरा सिंह के मुताबिक बठिंडा के कलेक्टर की ओर से भोला की मौत पर एक लाख रुपये ज़रूर दिए गए. उल्लेखनीय है कि कुछ समय पूर्व राज्य सरकार ने आत्महत्या करने वाले किसानों को दो लाख रुपये मुआवज़ा देने की घोषणा की थी, लेकिन पीड़ित परिजनों को उसका पूरा लाभ नहीं मिल पा रहा है.

संदूरा सिंह बताते हैं कि, कपास में सुंडी (कीड़ा) बहुत लगता है. कई बार तो फ़सल सिर्फ़ 20 हज़ार की होती है, जबकि कीटनाशक का ही ख़र्च 80 हज़ार रुपये हो जाता है. आज भी संदूरा सिंह और दर्शन सिंह दोनों पर सोसायटी, आढ़तिए और गांव के कुछ लोगों का कुल मिलाकर क़रीब 15 लाख रुपये का क़र्ज़ है. ज़मीन बिक जाने के कारण भोला सिंह ने ट्रैक्टर फाइनेंस कराया था और उसे ठेके पर चलाता था. गांव के कुछ अन्य लोगों के ट्रैक्टर भी भोला ठेकेदार के पास चलवाता था. इस तरह ठेकेदार पर क़रीब पांच लाख रुपये बकाया थे, लेकिन वह पैसे देने से मुकर गया. गांव वालों को क्या जवाब दिया जाएगा, इस भय से भोला सिंह ने आत्महत्या कर ली. भोला की मौत के बाद फाइनेंस कंपनी उसके ट्रैक्टर को भी ज़ब्त कर ले गई. संदूरा सिंह के मुताबिक ब्याज की दर दो से 10 प्रतिशत तक है. लेकिन लगातार ब्याज बढ़ते रहने और फ़सल नहीं होने से क़र्ज़ बढ़ता जाता है. परिवार में संदूरा सिंह की पत्नी और उनके दूसरे बेटे के अलावा भोला सिंह की विधवा व एक छह वर्षीया बेटी और 11 साल का लड़का है. दर्शन सिंह का परिवार भी साथ में ही रहता है. अब दोनों भाई ज़मीन अधिया लेकर खेती करते हैं. केंद्र सरकार द्वारा किसानों के क़र्ज़ माफी योजना का लाभ इन लोगों को नहीं मिला है. संदूरा सिंह के मुताबिक बठिंडा के कलेक्टर की ओर से भोला की मौत पर एक लाख रुपये ज़रूर दिए गए. उल्लेखनीय है कि कुछ समय पूर्व राज्य सरकार ने आत्महत्या करने वाले किसानों को दो लाख रुपये मुआवजा देने की घोषणा की थी, लेकिन पीड़ित परिजनों को उसका पूरा लाभ नहीं मिल पा रहा है.

तलवंडी तहसील के गांव चट्ठेवाला की रंजीत कौर के दो बेटे हैं. एक सातवीं कक्षा में तो दूसरा बेटा आठवीं में पढ़ता है. रंजीत कौर के पति जगजीत सिंह ने आर्थिक तंगी और क़र्ज़ से परेशान होकर 21 सितंबर 2003 में कीटनाशक पीकर आत्महत्या कर ली. रंजीत कौर बताती हैं कि, जगजीत ने ट्रैक्टर लिया था, लेकिन फ़सल ठीक नहीं होने से क़र्ज़ का बोझ बढ़ गया और हमारी दो कीले ज़मीन बिक गई. आज क़रीब आठ-नौ लाख रुपये का क़र्ज़ है. घर में खाने की भी तंगी है. रंजीत कौर कहती हैं, हम गांव के एक जमींदार से ज़मीन अधिया पर लेकर खेती करते थे. फ़सल में उसका हिस्सा देने के बावजूद भी वह ब्याज पर ब्याज लगाता जा रहा है.

अपने बेटों के साथ रंजीत कौर

डरावने हैं सर्वे के नतीजे

निरंतर घटते उत्पादन, बढ़ते क़र्ज़ और कृषि के अलाभकारी होने से पंजाब की खेती संकट में है. पंजाब कृषि विश्वविद्यालय (पीएयू) के सर्वे के मुताबिक 2000 से लेकर 2008 के बीच बठिंडा और संगरूर जिलों के 2,990 किसानों एवं कृषि मजदूरों ने कर्ज के बोझ, ग़रीबी एवं आर्थिक तंगी के कारण आत्महत्या की है. सर्वे में बताया गया है कि कपास की घटती पैदावार ने पंजाब की कपास पेटी को संकट में डाल दिया है. 2001 से 2005 के दौरान अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों में गिरावट होने से गेहूं और धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य नियंत्रित कर दिए गए. इस बीच गेहूं का समर्थन मूल्य 1.5 फीसदी और धान का 2.5 फीसदी की दर से बढ़ा, जबकि इनकी लागत में क्रमश: 8 फीसदी एवं 9 फीसदी तक बढ़ोत्तरी हो गई. इसके कारण प्रदेश में आर्थिक संकट बढ़ गया, जिसका परिणाम आत्महत्याओं के रूप में सामने आ रहा है. पीएयू के ताजा सर्वे के मुताबिक पंजाब के दक्षिण पश्चिमी जिलों की कपास पेटी के 93 फीसदी किसान परिवार क़र्ज़ में डूबे हैं. समस्या सिर्फ़ कपास पेटी तक सीमित नहीं है, बल्कि अन्य इलाक़ों में भी आत्महत्याओं के मामले सामने आ रहे हैं. इन जिलों में औसतन 69,518 रुपये का क़र्ज़ है. जबकि सर्वे में प्रति परिवार औसतन क़र्ज़ 2,66,636 रुपये आंका गया है.

खेतिहर मज़दूरों की आर्थिक स्थिति कृषि के बेहतर प्रदर्शन पर निर्भर करती है. 1990 से लेकर अब तक खेती में गिरावट से इन मज़दूरों की आर्थिक स्थिति कमज़ोर हुई है. दूसरी ओर, मशीनीकरण से कृषि रोज़गार कम होने और ग़ैर कृषि क्षेत्र में भी रोज़गार के अवसर घट जाने से समस्या बढ़ती रही. इस बीच खाद्यान्नों और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के दामों में बढ़ोतरी से ग़रीब परिवारों का जीवन यापन मुश्किल हो गया. भारतीय किसान यूनियन एकता (उगराहां) के एक सर्वेक्षण के मुताबिक 1990 से 2006 के डेढ़ दशक में मालवा के आठ जिलों में 13 हज़ार से अधिक किसानों ने क़र्ज़ न चुका पाने के कारण आत्महत्या की है. इस दौरान लिए क़र्ज़ का 44 फीसदी खाद इत्यादि पर, तो 13 फीसदी क़र्ज़ ट्रैक्टर आदि के लिए लिया गया है.

बठिंडा जिले के कर्मगढ़ छतरा गांव निवासी स्वर्ण सिंह की उम्र क़रीब 70 वर्ष है. उन्होंने बचपन से लेकर बुढ़ापे तक किसानी को क़रीब से देखा-समझा है और खेती-बाड़ी का अर्थशास्त्र वह बख़ूबी जानते हैं. गांव में रहकर भी अपने अनुभवों से उन्होंने कृषि के गहराते संकट को काफी पहले भांपते हुए 80 के दशक में ही बच्चों को खेती से अलग हो जाने की नसीहत दे दी थी. अब उनका बेटा और बेटी विदेश में रह रहे हैं. बकौल स्वर्ण सिंह, परिवार में कुल छह सदस्य हैं, जबकि ज़मीन 5 एकड़ है. यदि मैं बच्चों को खेती से अलग होने के लिए नहीं कहता, तो आज तक मेरी ज़मीन कब की बिक गई होती. 1967-68 में मैंने खेती शुरू की थी. तब से लेकर अब तक महंगाई कई गुणा बढ़ चुकी है, लेकिन सूचकांक के आधार पर आज भी किसानों को फ़सलों का मूल्य नहीं मिल रहा है.

नज़दीक की गिदिरबा मंडी का उदाहरण देते हुए वह कहते हैं-वहां बीजों के प्रचार का कोई बोर्ड दिखाई नहीं देता था, लेकिन आज वहां विभिन्न कंपनियों के बीज देखने को मिल जाते हैं. सवाल करते हुए स्वर्ण सिंह कहते हैं कि यह बदलाव आख़िर कैसे आया? इस बात को समझाने के लिए वह 60 के दशक में लौट पड़ते हैं और बताते हैं कि जब देश को खाद्यान्नों की ज़रूरत थी तो अमेरिका से पीएल-480 समझौता हुआ. इसके साथ सौगात में भारत को कीटनाशक, यूरिया और कृषि विश्वविद्यालय खोले जाने की शर्तें भी मिली थीं. 1968 में ग्रामसेवक ठेले पर रखकर यूरिया लाया और मुफ़्त सैंपल बांटते हुए कहा कि इससे फ़सलें, मोर के पंख जैसी खिल जाएंगी. अगले साल ग्रामीणों से पांच रुपये प्रति क्विंटल की दर से किराया भी लिया गया. तब से हमारे गांव में उसकी मांग निरंतर बढ़ती रही और आज तो डीएपी व पोटाश के लिए हमें विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है.

केंद्र सरकार द्वारा किसानों के क़र्ज़ माफ करने की योजना की बात पर स्वर्ण सिंह कहते हैं कि यह तो पता ही नहीं चल रहा कि किसके क़र्ज़ माफ किए जा रहे हैं? वह कहते हैं कि बैंकों में क़र्ज़ के ऐसे हज़ारों मामले लंबित पड़े थे, जिनका भुगतान नहीं हो पा रहा था. बताया जाता है कि क़र्ज़ माफी योजना के तहत ऐसे बकाएदारों के क़र्ज़ माफ किए गए हैं, जिनके खातों को देखरेख करना बैंकों के लिए सिरदर्दी बन चुका था. जानकारों के मुताबिक क़र्ज़ माफी योजना की एक अन्य शर्त के मुताबिक जो किसान एक साथ पैसा लौटाएगा उसकी 20 फीसदी राशि माफ कर दी जाएगी. जो लोग क़र्ज़ भरने को तैयार थे, उन्हें इसी श्रेणी में रखा गया. इस तरह से सीमांत एवं मझोले किसानों पर तो क़र्ज़ का बोझ जस का तस बना रहा, जबकि अधिकतर बड़े किसानों ने इसका फ़ायदा उठाया है.

वर्ण सिंह बताते हैं कि छतरा में 250 परिवार हैं. उनमें से सिर्फ़ दो लोगों के क़र्ज़ माफ हुए हैं. क़र्ज़ माफी की बात पर सुखदर्शन सिंह की भी यही प्रतिक्रिया है. छतरा के ही एक अधेड़ सुखदर्शन सिंह पांच कीले के काश्तकार हैं और वह नरमा (कपास) और कनक (गेहूं) की खेती करते हैं. वह बताते हैं कि कपास में सुंडी (कीड़ा) लग गया, जिसकी दवाई के पैसे बनिए ले गए और गुजारा मुश्किल हो गया. ऐसे में क़र्ज़ लेकर उन्होंने गाएं और भैंसे ख़रीद कर दूध का काम शुरू कर दिया है. वह कहते हैं कि क़र्ज़ उनका माफ करना चाहिए, जो पैसे भरने को तैयार हों, लेकिन जो लोग पैसे वापस ही नहीं करना चाहते थे उन्हें ही क़र्ज़ माफी दी जा रही है. इस तरह ग़रीब किसानों को उसका लाभ नहीं मिल पा रहा है. सामाजिक कार्यकर्ता मोहणा सिंह केंद्र सरकार की क़र्ज़ माफी योजना को नाटक करार देते हैं. वह कहते हैं कि अकाली दल की सरकार होने से पंजाब के ग़रीब किसानों को उसका लाभ केंद्र की यूपीए सरकार ने नहीं दिया. कृषि आगतों पर कंपनियों के एकाधिकार और बाज़ारीकरण से

किसानों को उसकी भरपाई के लिए क़र्ज़ लेना खेती का एक अनिवार्य हिस्सा बनता चला गया. दूसरी ओर कीटनाशकों और रासायनिक खादों का धीमा ज़हर खाद्यान्नों में प्रवेश कर जाने से उसका असर धीरे-धीरे स्वास्थ्य पर भी पड़ने लगा. लोगों को कैंसर जैसी बीमारियां हो रही हैं. बीकानेर में कैंसर का बड़ा अस्पताल है और बठिंडा से बीकानेर जाने वाली गाड़ी को अब कैंसर वाली गाड़ी कहा जाने लगा है. इसलिए कि इस गाड़ी से बड़ी संख्या में लोग कैंसर का इलाज कराने बीकानेर जाते हैं. उल्लेखनीय है कि कुछ अध्ययनों में खेती में कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों की बात सामने आ चुकी है. कई इलाक़ों में तो रासायनिक उर्वरकों से ज़मीन के बंजर होने की बात भी सामने

"उद्योगपतियों की है सरकार किसानों की नहीं परवाह"

बेटी के साथ अपने पति की तस्वीर दिखातीं सिमरजीत कौर (बैठी हुई)

लाचार रंजीत कौर को अक़्सर ज़मींदार की धमकियां सुननी पड़ती हैं. गुजारे के लिए उन्हें मिट्टी के चूल्हे बेचकर और दिहाड़ी करके बच्चों का पालन करना पड़ता है. विधवा पेंशन भी अनियमित रहती है. अन्य किसी तरह का मुआवज़ा या क़र्ज़ माफी का लाभ रंजीत कौर को नहीं मिला है. इसके बावजूद उन्होंने हिम्मत नहीं हारी है. वह अपने दोनों बेटों को पढ़ाना चाहती हैं. लेकिन स्कूल में बच्चों को कोई आर्थिक सहायता नहीं मिल पाने से वह निराश हैं और कहती हैं कि सरकार कोई काम दे तो मैं कर सकती हूं. बच्चे आख़िर क्या कर सकते हैं?

चट्ठेवाला गांव के ही जगरूप सिंह ने भी चार मई 2002 को क़र्ज़ के बोझ से दबकर आत्महत्या कर ली थी. उनकी विधवा जसपाल कौर बताती हैं कि, घर में पांच लोग हैं. डेढ़ कीले ज़मीन है, जिस पर बेटा कनक (गेहूं) और नरमा (कपास) की खेती करता है. इसी से परिवार का गुजारा चल रहा है. जसपाल कौर बताती हैं कि उन पर बैंक का 40 हज़ार, बनिए का 70 हज़ार और सोसायटी का 50 हज़ार क़र्ज़ है. ब्याज समेत यह कर्ज़ दो लाख रुपये से ऊपर हो जाता है. पति ने ख़ुदकुशी करने से पहले ठेके पर क़रीब छह कीले ज़मीन लेकर कनक की खेती की. क़रीब 150 मन कनक इस साल पैदा हुआ था. इसी बीच 40 हज़ार रुपये क़र्ज़ लेकर बोरवैल भी उन्होंने लगाया था. बोरवैल की किस्त जब आई तो जगरूप सिंह आढ़ती से पैसे लेने गए, लेकिन वह पैसे देने से मुकर गया. निराश जगरूप सिंह के सम्मान को क़र्ज़ न भर पाने से ठेस लगी और उन्होंने कीटनाशक पीकर आत्महत्या कर ली. जसपाल कौर बताती हैं कि उनका बेटा पढ़ना चाहता था, लेकिन पिता की मौत से उसे 12वीं के बाद पढ़ाई छोड़नी पड़ गई. जसपाल कौर को भी किसी तरह का मुआवज़ा या क़र्ज़ माफी का लाभ नहीं मिला. सरकार की ओर से विधवाओं को दी जाने वाली 10 हज़ार रुपये की मदद के लिए उन्होंने कई बार आवेदन किया, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ. तलवंडी साबो के गांव मौड़ निवासी तेजा सिंह बताते हैं, हमारे गांव में आधे से अधिक लोग क़र्ज़ में डूबे हैं. 1990 से लेकर अब तक मौड़ में 30-35 किसानों ने आत्महत्या की है. मरने वालों में ज़्यादातर लोगों की उम्र 18 से 35 साल के बीच है. कई गांवों में तो 50 से अधिक लोगों ने ख़ुदकुशी की है.

मौड़ के रहने वाले जगसीर सिंह ने हाल ही में पांच मई 2009 को फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली. उनके पीछे घर में पत्नी के अलावा दो बेटियां और दो बेटे हैं. उनकी पत्नी सिमरजीत कौर बताती हैं कि, हम पर सरकारी और ग़ैर सरकारी मिलाकर क़रीब 12 लाख रुपये का क़र्ज़ है. वह (जगसीर सिंह) क़र्ज़ की चिंता में रात-दिन डूबे रहते थे. पांच कीले ज़मीन भी बिक चुकी है, जबकि महज़ चार कीले खेती योग्य भूमि बची है. बच्चों का पालन-पोषण कैसे होगा, इस बात की चिंता सिमरजीत को सताने लगी है.

उमाशंकर मिश्र
feedback.chauthiduniya@gmail.com

कुछ कड़वी बातें

1 पंजाब कृषि विश्वविद्यालय ने राज्य में किसानों और खेतिहर मज़दूरों की आत्महत्याओं के कारणों को समझने के लिए बठिंडा और संगरूर जिले के 875 गांवों की सर्वेक्षण रिपोर्ट सरकार को सौंप दी है. रिपोर्ट के मुताबिक इन जिलों में ग़रीबी, आर्थिक तंगी और क़र्ज़ से त्रस्त 2,990 किसानों व खेतिहर मज़दूरों ने आत्महत्या की है.

2 पंजाब के 89 प्रतिशत किसान परिवार क़र्ज़ में डूबे हैं. प्रत्येक परिवार पर क़रीब 1.78 लाख रुपये का क़र्ज़ है और प्रति एकड़ ज़मीन पर 50,140 रुपये का बकाया है. हरित क्रांति के 40 साल बाद पंजाब के किसान की औसत आय महज़ 3,200 रुपये है. क्या यह शर्म की बात नहीं है कि किसान खेती छोड़ रहे हैं और हज़ारों आत्महत्याएं हो रही हैं?

3 आज भले ही गेहूं का आयात न हो रहा हो, लेकिन हमें गेहूं पैदा करने वाली चीज़ों का आयात तो करना ही पड़ता है. कंपनियों ने कृषि इनपुटों पर एकाधिकार जमा लिया है. इसके लिए किसानों को क़र्ज़ लेना पड़ता है. क़र्ज़ की यह विषबेल निरंतर बढ़ती है और अंतत: किसानों को अपने फंदे में जकड़ कर उनका दम घोंट देती है.

4 चावल और गेहूं के ख़रीद मूल्य में क्रमश: 61 और 69 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है. कपास का ख़रीद मूल्य भी 2,050 रुपये से बढ़कर 3,000 रुपये तक पहुंच गया. लेकिन पंजाब में किसान आत्महत्याएं सोचने पर विवश कर देती हैं कि क्या किसानों की जेब में फ़सलों के लिए कुछेक सौ रुपये डाल देने से खेती की तस्वीर बदल जाएगी?

5 पंजाब में मां के दूध में कीटनाशक पाए जाने की पुष्टि पहले ही हो चुकी है. कीटनाशक कैंसर जैसे भयानक रोगों और कन्या भ्रूण क्षरण का कारण बन रहे हैं. ज़मीन बंजर हो रही है और पर्यावरण में हुई उथल-पुथल, वातावरण में घुले रासायनों एवं प्रदूषित जल ने समूची भोजन श्रृंखला को विषाक्त बना दिया है.

पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों में कृषि की असफलता का पर्याय पूरे भारत की कृषि व्यवस्था की असफलता के रूप में देखा जाने लगेगा. इसी भय से सरकार पंजाब के किसानों की आत्महत्या के मामलों स्वीकार करने से बच रही है. जबकि हालात बेहद ख़राब हैं और एक ही परिवार में दो से चार सदस्य तक आत्महत्या कर रहे हैं. मूवमेंट अगेंस्ट स्टेट रिप्रेशन (एमएशसआर) के संयोजक डॉ. इंद्रजीत सिंह जैजी ने संगरूर जिले के मूणक एवं लहरा सब डिवीजन के 91 गांवों में किए गए अपने अध्ययन के आधार पर किसान आत्महत्याओं की परिघटना को 80 के दशक में ही महसूस कर लिया था. 1988-89 में गुलाड़ी गांव के नौ किसानों ने जब आर्थिक तंगी के चलते आत्महत्या की, तो जैजी ने पत्र लिख कर सरकार को इसकी जानकारी दी थी. सरकार ने भी अपने स्तर पर जांच कराई और आत्महत्याओं को स्वीकार किया, लेकिन इसके पीछे अन्य कारण बताए गए. बकौल जैजी, 1992 में तो सरकार बिल्कुल ही चुप हो गई, क्योंकि सरकार किसान आत्महत्याओं एवं आतंकवाद दोनों को एक साथ स्वीकार करने से कतरा रही थी. यह चुप्पी 1997 तक बनी रही. 1998 में एमएएसआर की ओर से राष्ट्रपति को इस बाबत पत्र लिखा गया. राष्ट्रपति की सिफ़ारिश पर राज्य सरकार ने इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट एंड कम्युनिकेशन के चेयरमैन की देखरेख में सर्वेक्षण कराया. इसकी रिपोर्ट में भी किसान आत्महत्याओं की बात को स्वीकार किया गया. लेकिन कितनी हो रही हैं, इस बात को उजागर नहीं किया गया. तत्कालीन मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल भी इस बात को स्वीकार नहीं कर रहे थे. हालांकि इस सर्वे रिपोर्ट का प्रभाव दक्षिण भारत में हो रही किसान आत्महत्याओं पर पड़ा और इसके मद्देनज़र वहां किसानों को राहत पहुंचाने के कुछेक क़दम उठाये जाने लगे. आख़िरकार बादल ने 2001 में पीड़ित परिवारों को दो लाख मुआवज़ा दिए जाने की घोषणा कर दी, लेकिन इस पर अमल नहीं हो सका. एक साल बाद सत्ता अमरिंदर सिंह के हाथ में आ गई. उन्हें भी सामाजिक कार्यकर्ताओं ने समस्या से अवगत कराया, लेकिन जब क़रीब डेढ़ साल तक उनके कानों पर जूं नहीं रेंगी तो हाईकोर्ट में पीड़ितों को मुआवज़ा दिलाने के लिए केस दायर कर दिया गया. 2004 में अमरिंदर सरकार ने हाईकोर्ट में कहा कि हम किसान आयोग बना रहे हैं. इस कवायद में डेढ़ साल और बीत गए. किसान आयोग के अध्यक्ष डॉ. कालकर ने 2006 में अपनी संस्तुतियां प्रदेश सरकार को सौंप दी. उसमें पीड़ित परिवार को 50 हज़ार रुपये तत्काल देने और मृतक के आश्रित को 1500 रुपये मासिक पेंशन देने की बात शामिल थी. कालकर ने सरकार से गेहूं की क़ीमत सीधे किसान को देने, क़र्ज़ पर दोगुने से अधिक की रिकवरी न करने, ब्याज दर 10 प्रतिशत तय करने और क़र्ज़ के बदले ज़मीन ज़ब्त न करने की सिफ़ारिश की.

2007 में मुख्यमंत्री प्रकाश सिंह बादल ने पुलिस विभाग से किसान आत्महत्याओं की जांच कराई. इसमें पांच साल के दौरान महज़ सात किसानों की आत्महत्याओं की बात कही गई थी. दूसरी ओर, रिवेन्यु डिप्टी कमीशनर की रिपोर्ट पांच साल में आत्महत्याओं की संख्या 132 बता रही थी. वहीं एमएएसआर के मुताबिक संगरूर जिले के सिर्फ़ मूणक और लहरा सब-डिवीजन में ही 1990 से लेकर अब तक 91 गांवों के 1665 किसान आत्महत्या कर चुके हैं. इनमें से 1582 किसानों के एफीडेविट भी संस्था के पास मौजूद हैं. आज जब पंजाब कृषि विश्वविद्यालय की सर्वे रिपोर्ट संगरूर और बठिंडा जिलों में 2990 किसानों द्वारा आत्महत्या कर लेने की बात बयां कर रही है, तब सब की आंखें खुली रह गई हैं. यह सिर्फ़ दो जिलों की दास्तान है, जिसके आधार पर पंजाब के सभी 20 जिलों का अंदाज़ा लगाया जा सकता है. वैसे ये आंकड़े भी अभी वास्तविक संख्या से काफी कम हैं.

आत्महत्या के ज़्यादा मामले उन इलाक़ों से आ रहे हैं, जहां कपास की खेती होती है. यहां किसानों को मूल्य संवर्धन के अवसर नहीं मिलना भी समस्या के कारणों में रहा है. सीलिंग एक्ट के तहत कोई भी किसान 17.5 एकड़ से अधिक ज़मीन गांव में नहीं रख सकता. दूसरी ओर उपभोक्ताओं को सब्सिडी देने के लिए खाद्यान्नों के दामों को नियंत्रित कर दिया गया. इस तरह से किसान उपभोक्ताओं को सब्सिडी दे रहा है, जिसकी क़ीमत उसे अपनी जान देकर चुकानी पड़ती है. जबकि दूसरे देशों में खाद्यान्नों पर सब्सिडी राज्य देता है. वस्तुत: आत्महत्याओं के मूल में लागत और मूल्य का सही निर्धारण नहीं होना मुख्य है. इसके अलावा पानी का समुचित बंटवारा न होने से सिंचाई की समस्या भी पैदा हुई है. पंजाब का तीन चौथाई पानी अन्य राज्यों में बांट दिया गया. कई मामलों में बीटी कॉटन के दुष्प्रभावों की बात कही जाती है, लेकिन यह मुद्दा इतना बड़ा नहीं है. बीजों का एकाधिकार हमारे पास रहे, यह ज़रूरी है. विडंबना है कि सरकार उद्योगपतियों के इशारों पर चलती है और उन्हीं के अनुकूल नीतियां भी बनाती है. राज्यों में आढ़तियों का सिक्का चलता है और सरकार पर उनका एक तरह से नियंत्रण रहता है. आज सरकारी अनुदानों का क़रीब 66 फीसदी हिस्सा इंडस्ट्री को जा रहा है, जबकि महज़ 33 फीसदी गांवों को मिल रहा है.

हरित क्रांति के कारण खेती तेज़ी से की जाने लगी और ज़मीन को ख़ाली छोड़ने के बजाय एक वर्ष में दो से तीन फ़सलें ली जाने लगी. इसके लिए कीटनाशकों, रासायनिक उर्वरकों एवं जेनेटिक बीजों के उपयोग की बाध्यता ने खेती को महंगा बना दिया. खेती की लागत जुटाने के लिए किसानों को क़र्ज़ लेना पड़ता है. इसमें संस्थागत क़र्ज़ 45 फीसदी, जबकि 55 फीसदी ग़ैर संस्थागत क़र्ज़ होते हैं.

सरकार ने किसानों के 71 हज़ार करोड़ रुपये के क़र्ज़ माफ करने की घोषणा की थी, लेकिन इसमें पंजाब का हिस्सा महज़ एक फीसदी था. सिर्फ़ इसलिए कि रिकवरी की दर यहां अधिक है. पंजाब की हर बार उपेक्षा की गई है. आत्महत्याग्रस्त राज्यों को चार हज़ार करोड़ का पैकेज दिया गया, लेकिन पंजाब को नहीं मिला. फिर 25 हज़ार करोड़ रुपये ड्राईलैंड एरिया के तहत दिए गए, लेकिन पंजाब को यहां भी कुछ नहीं मिला.

(डॉ. इंद्रजीत सिंह जैजी से बातचीत पर आधारित)

आई है. नेशनल सैंपल सर्वे आर्गेनाइज़ेशन के मुताबिक देश के अन्य राज्यों की अपेक्षा पंजाब में क़र्ज़ का स्तर अधिक है. ग़ैर संस्थागत क़र्ज़ दायरा भी काफी अधिक है, जिस पर 57 प्रतिशत तक ब्याज वसूले जाने की बात कही जा रही है. पंजाब कृषि विश्वविद्यालय (पीएयू) ने 2006 के दौरान क़र्ज़ का स्तर 24 हज़ार करोड़ रुपये आंका है. इसमें से 12 हज़ार करोड़ रुपये ग़ैर संस्थागत क़र्ज़ है. इसकी वसूली के लिए अपनाए जाने वाले बाध्यकारी तरीक़े कई बार किसानों पर सामाजिक एवं मानसिक दबाव का कारण बन जाते हैं. कुछ मामलों में संस्थागत क़र्ज़ वसूली के लिए इसी तरह के तरीक़े अपनाए जाने की बात भी सामने आई हैं. आय में गिरावट के साथ क़र्ज़े का अनुत्पादक गतिविधियों में उपयोग भी देनदारी बढ़ने का कारण बताया जा रहा है. भारतीय किसान यूनियन के सुखदेव सिंह खोखरी कलां कहते हैं कि खेती से मुनाफ़ा नहीं होने से अनुत्पादक गतिविधियों में क़र्ज़ का उपयोग किसानों की मजबूरी बन जाती है. वह किसानों को कोऑपरेटिव सोसायटियों के ज़रिए कृषि इनपुट मुहैया कराने की वकालत करते हुए कहते हैं कि इससे किसानों को क़र्ज़ लेने से मुक्ति मिल सकती है. सूदखोरों और कमीशन एजेंटों द्वारा मनमानी वसूली पर सरकार की लगाम न होने को वह चिंताजनक मानते हैं. साथ ही वर्तमान सीलिंग एक्ट को भी वह दोषपूर्ण बताते हुए कहते हैं कि राज्य में 16 लाख 66 हज़ार हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि बेकार पड़ी है, जबकि भूमिहीन कृषकों की संख्या बढ़ रही है. बहरहाल विभिन्न पहलुओं को देखते हुए जब तक कोई व्यवस्थित मूल्यांकन नहीं किया जाता, तब तक अकेले क़र्ज़ को आत्महत्याओं का कारण नहीं माना जा सकता. जो भी हो, आत्महत्याओं का दायरा काफी विस्तृत जान पड़ता है. कुछ लोगों के मुताबिक, मरने वालों की संख्या महज़ 130 है तो कुछ लोग 40 हज़ार से भी अधिक आत्महत्याएं होने की बात कह रहे हैं. जो भी हो, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के सर्वेक्षण के नतीजे आंखें खोलने वाले हैं और इससे सबक़ लेने की ज़रूरत है.

"किसानों की असल शुद्ध आय में कमी आत्महत्याओं का कारण है. कपास की शुद्ध आमदनी 1997 से 2003 के बीच ऋणात्मक रही. धान की असल शुद्ध आमदनी 2002 के 2000 रुपये प्रति हेक्टेयर से घटकर 2005 में 1100 रुपये रह गई. इसी तरह गेहूं पर शुद्ध लाभ 2002 में 2200 रुपये प्रति हेक्टेयर था, जो 2005 में घटकर मात्र 300 रुपये रह गया."

डॉ. सुखपाल सिंह
पंजाब कृषि विश्वविद्यालय

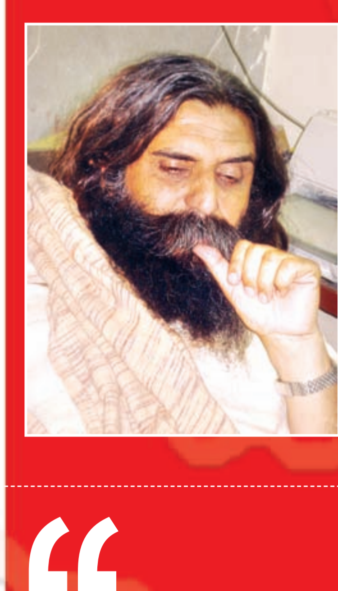

"हरित क्रांति की ख़ुशहाली 20 साल भी नहीं टिक सकी और 1985 से ही आत्महत्याओं का दौर शुरू हो गया. संगरूर, मानसा और बठिंडा से शुरू हुई संताप की लपटें मालवा के मुक्तसर, फरीदकोट, फिरोज़पुर, मोगा समेत पूरे पंजाब में पहुंच चुकी हैं."

उमेंद्र दत्त
खेती विरासत मिशन, बठिंडा

"सरकार किसानों के प्रति उदासीन है. फ़सलों पर सरकारी समर्थन मूल्य में से कृषि लागत निकाल पाना भी मुश्किल हो जाता है. खेती में लाभ न होने से कृषि आगतों के अलावा अनुत्पादक गतिविधियों के लिए भी किसानों को क़र्ज़ लेना पड़ता है. विकास का पैमाना उत्पादन नहीं, उत्पादक को मानना चाहिए."

सुखदेव सिंह खोखरी कलां
भारतीय किसान यूनियन

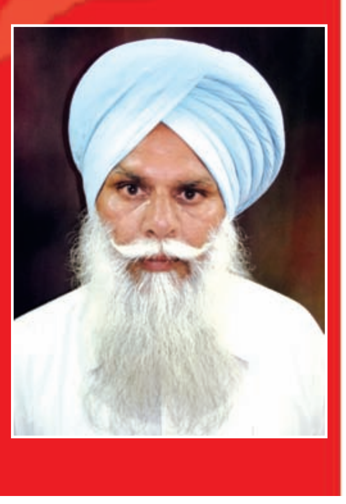

आयोगों की अनदेखी

फोटो-सुनील मल्होत्रा

संप्रग सरकार ने अपने पहले कार्यकाल में तीन आयोग और पांच जांच-समितियां बनाई थीं. इनके विषयों में असंगठित क्षेत्र की मज़दूरी से लेकर अल्पसंख्यकों के हालात तक शामिल थे. इसमें केंद्र-राज्य संबंधों पर बने आयोग को छोड़कर बाक़ी सब ने अपनी रिपोर्ट दे दी है.

गंभीर बात यह है कि राज्य और केंद्र की सरकारों से मिले तमाम तरह के आश्वासनों के बावजूद अब तक इन रिपोर्टों को संसद के पटल पर नहीं रखा गया है, न ही इनकी सिफ़ारिशों को लागू ही किया गया है.

न्यायाधीश राजिंदर सच्चर ने मुसलमानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर एक समग्र रिपोर्ट तैयार की थी. इसमें सरकार से कई सिफ़ारिशें भी की गई थीं. सरकार ने उनको लागू करने के बजाय एक अनूठा काम किया. उसने सच्चर समिति की सिफ़ारिशों का अध्ययन करने के लिए रंगनाथ मिश्र आयोग का गठन कर दिया. मज़े की बात यह कि रंगनाथ मिश्र ने भी अपनी रिपोर्ट दे दी है. बावजूद इसके, सरकार की ओर से संसद के पटल पर इसे रखना अब भी बाक़ी ही है.

मुंबई धमाकों के बाद महाराष्ट्र सरकार ने इसकी जांच के लिए एक जांच आयोग का गठन किया था. अब यह राजनीतिक विवाद का सबब बन गया है. राज्य सरकार ने राम प्रधान समिति की रिपोर्ट दबाने का फ़ैसला कर लिया है, जबकि उसने विधानसभा के सामने कार्रवाई की बात स्वीकार कर ली थी. इससे महाराष्ट्र में एक तूफ़ान ही आ गया. विपक्ष ने राज्य सरकार पर मामले में ढील बरतने का आरोप लगाया.

ऐसी ही एक और अहम रिपोर्ट जीवन रेड्डी कमीशन की है उसे भी संसद में पेश नहीं किया. जीवन रेड्डी आयोग की सिफ़ारिश थी कि विवादास्पद आर्म्ड फोर्सेज़ स्पेशल पावर्स एक्ट को वापस लिया जाए. दुर्भाग्य की बात तो यह कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के सार्वजनिक तौर पर कई आश्वासन देने के बाद भी रिपोर्ट और उसकी सिफ़ारिशों का लागू होना बाक़ी है.

पूर्व केंद्रीय गृहमंत्री शिवराज पाटिल ने कई बार संसद में आश्वासन दिया था कि सरकार नए पुलिस एक्ट को लाने और अपराध की न्यायिक प्रक्रिया को सुधारने के लिए कटिबद्ध है. इस सिलसिले में भी कई समितियों की सिफ़ारिशों को लागू किया जाना बाक़ी है.

इसी तरह अर्जुन सेनगुप्त आयोग ने असंगठित क्षेत्र में मज़दूरों की बदहाली दूर करने के लिए कई सुझाव दिए थे. उनका भी लागू होना अभी बाक़ी है.

आयोगों और समितियों की रिपोर्टों पर केंद्र सरकार के रुख़ का असर राज्यों पर भी पड़ता है. केंद्र की नक़ल में राज्यों में अक्सरहां इस तरह की रिपोर्टों को ठंडे बस्ते में डाल दिया जाता है.

यह मसला काफी गंभीर इसलिए है कि आयोगों या समितियों के गठन के साथ ही उस पर ख़र्च भी आरंभ हो जाता है, जो काफी रहता है. ये पैसे आम नागरिकों द्वारा मेहनत से की गई कमाई पर वसूले गए कर होते हैं. इसलिए आयोगों या समितियों की रपटों पर अमल तत्काल होना चाहिए. आए दिन बनने वाले ऐसे आयोगों या समितियों के प्रति विश्वास जगाने के लिए भी ऐसा करना आवश्यक है.

ग़ौरतलब है कि मुंबई धमाकों के बाद महाराष्ट्र सरकार ने इसकी जांच के लिए एक जांच आयोग का गठन किया था. अब यह राजनीतिक विवाद का सबब बन गया है.

राज्य सरकार ने राम प्रधान समिति की रिपोर्ट दबाने का फ़ैसला कर लिया है, जबकि उसने विधानसभा के सामने कार्रवाई की बात स्वीकार कर ली थी. इससे महाराष्ट्र में एक तूफ़ान ही आ गया. विपक्ष ने राज्य सरकार पर मामले में ढील बरतने का आरोप लगाया. हालांकि महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री अशोक चव्हाण ने बचाव की मुद्रा में कहा कि वह न तो किसी को बचा रहे हैं, न ही किसी को बलि का बकरा बना रहे हैं. उन्होंने कहा- मैं तो बस तथ्यों को देख रहा हूं.

पूर्व केंद्रीय गृह सचिव राम प्रधान कहते हैं कि रिपोर्ट में कुछ भी संवेदनशील नहीं है. ठीक उसी समय राजनीतिक दल सरकारी फ़ैसले की आलोचना में लगे हैं. नौकरशाहों का तबका ऑफ द रिकॉर्ड बताता है कि शहर के पुलिस कमिश्नर हसन गफ़ूर को बलि का बकरा बनाया गया. वे आरोप लगाते हैं कि राजनीतिक व्यवस्था की कमियों की वजह से ही रिपोर्ट की सारी बातें सामने नहीं आईं. हालांकि मुख्यमंत्री चव्हाण अपने बचाव में कहते हैं कि वह कमिटी की कुछ खोजों से सहमत नहीं थे, और इसीलिए उन्होंने केवल एक्शन टेकेन रिपोर्ट (एटीआर) को विधानसभा में रखा.

फ़िलहाल, हम ले रहे हैं एक जायज़ा उन कुछ अहम समितियों और जांच आयोगों का, जो हाल के वर्षों में गठित की गईं. लिबरहान आयोग ने तो सबसे लंबे समय तक काम करने वाले आयोग के तौर पर एक रिकॉर्ड ही बना लिया है. उसे कुल मिलाकर 47 बार विस्तार दिया गया और पूरे 17 वर्षों बाद हाल ही में इसने अपनी रिपोर्ट दी है.

सच्चर समिति

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने नवंबर 2006 में जस्टिस राजिंदर सच्चर की नियुक्ति की थी, ताकि मुस्लिम समुदाय के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक हालात का जायज़ा लिया जा सके. रिपोर्ट में यह निष्कर्ष निकला था कि मुस्लिम समुदाय अल्पसंख्यकों में सबसे पिछड़े समुदायों में से एक है. राज्यवार विश्लेषण की रिपोर्ट में यह बात दर्ज़ की गई थी कि कई इलाक़ों में तो मुसलमान दलितों से भी पिछड़े हैं. समिति ने कई सिफ़ारिशें कीं, ताकि उनके मुस्लिम समुदाय के साथ हो रहे भेदभाव को ख़त्म कर उसे भी दूसरे समुदायों की बराबरी पर लाया जा सके. सरकार ने इन सिफ़ारिशों को स्वीकार करने की जगह सरकार ने समय गुज़ारने के लिए एक और कमिटी बना दी, जो सच्चर समिति की सिफ़ारिशों की जांच करेगी. संपर्क करने पर जस्टिस सच्चर हिचकते हुए बताते हैं कि उनको एक काम सौंपा गया था और उन्होंने पूरी ईमानदारी से अपना काम किया. अब तो जो करना है, सरकार को करना है.

सभी फोटो-प्रभात पाण्डेय

अर्जुन सेनगुप्ता आयोग

यूपीए सरकार ने अपने पहले कार्यकाल में जो साझा न्यूनतम कार्यक्रम अपनाया था, उसकी एक बड़ी बात सभी मज़दूरों, ख़ासकर असंगठित क्षेत्र (जो हमारी कार्यक्षमता का 90 फ़ीसदी हिस्सा तय करते हैं) में काम करने वालों के कल्याण का ख़याल रखने की थी. सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य बीमा और इस तरह की अन्य सुविधाएं, बुनकरों, हैंडलूम का काम करनेवालों, मछुआरों, ताड़ी उतारने वालों और बीड़ी बनाने वालों वग़ैरह के लिए मुहैया कराने के पीछे की यह सोच थी. वामदलों के दबाव में आकर सरकार ने सितंबर 2004 में अर्जुन सेनगुप्ता की सदारत वाले एक आयोग की स्थापना की. आयोग ने अपने अध्ययन में पाया कि भारत में 836 मिलियन लोग रोज़ाना 20 रुपये से भी कम पर गुज़ारा करते हैं. इसके साथ ही असंगठित क्षेत्र के पांच-छह फ़ीसदी लोगों से अधिक को कोई भी सुरक्षा उपलब्ध नहीं है. सरकार का दावा है कि उसने समिति की रिपोर्ट से अधिक बढ़कर काम किया है, लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि सरकार ने आंखों में धूल झोंकने से अधिक कुछ नहीं किया है.

रंगनाथ मिश्र आयोग

सरकार ने मई 2007 में जस्टिस रंगनाथ मिश्र आयोग का गठन किया था, ताकि भारत में मुसलमानों की दयनीय हालत को सुधारा जा सके. आयोग ने सिफ़ारिश की थी कि कम से कम 15 फ़ीसदी सीटें सभी ग़ैर-अल्पसंख्यक संस्थानों में माइनॉरिटी के लिए आरक्षित हों. इनमें 10 फ़ीसदी मुसलमानों के लिए आरक्षित हों, जबकि बाक़ी दूसरे अल्पसंख्यक समुदायों के लिए. इस समिति ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि कुल मिलाकर अन्य पिछड़े वर्ग के 27 फ़ीसदी आरक्षण में से 8.4 फ़ीसदी सीटें अल्पसंख्यकों के लिए दी जाएं. सरकार ने हालांकि अब तक इन सिफ़ारिशों पर अमल नहीं किया है.

सरकार का दृष्टिकोण तो ख़ैर हाल ही में नियुक्त अल्पसंख्यक मामलों के राज्यमंत्री सलमान ख़ुर्शीद के बयान से ही समझ में आ जाता है. हाल ही में दिए गए एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा कि आरक्षण कोई विकल्प नहीं है. ख़ुर्शीद ने कहा कि मुसलमानों के लिए आरक्षण तो दरअसल एक दोधारी तलवार है. यह तो ईर्ष्या का विषय हो सकता है. हमें तो दरअसल दूसरे विकल्पों की तलाश करनी चाहिए. अल्पसंख्यकों ने उनके बयान पर तल्ख़ी जताई है. भाजपा ने इस पर ख़ुशी जताई है. मुख्तार अब्बास नकवी ने मंत्री महोदय के बयान पर संतोष ज़ाहिर करते हुए कहा है कि उनको ज़मीनी हालात के बारे में व्यावहारिक ज्ञान है.

हैं और भी उदाहरण

ये सब तो महज़ कुछ उदाहरण हैं. सरकार किस तरह पैसों और संसाधनों की बर्बादी करती है, उसके आयाम तो कई हैं. सरकार ने स्पेशल आर्म्ड फोर्सेज एक्ट को रद्द करने के लिए जीवनरेड्डी कमीशन, सिख विरोधी दंगों की जांच के लिए नानावती कमीशन, दवाओं की गुणवत्ता की जांच के लिए माशेलकर कमिटी, 1993 के मुंबई दंगों के लिए श्रीकृष्ण कमीशन, राज्य-केंद्र संबंधों के लिए मदन मोहन पुंछी समिति और बाबरी मस्जिद ढहाने की जांच के लिए लिबरहान आयोग बनाया. परिणाम सबके सामने हैं. नतीजा वही ढाक के तीन पात रहे. क्या हमें कुछ और कहने की ज़रूरत है?

एप्पू एस्थोस सुरेश
feedback.chauthiduniya@gmail.com

बचाने वाले हाथ भी कम नहीं थे

अर्जुन भगत

सूरज दिल्ली समेत उत्तरी भारत के विभिन्न हिस्सों में चार नवंबर 1984 को भी निकला. उस सुबह भी उन्मादी हिंसा और नरसंहार का ग़म ताज़ा था, जो 31 अक्टूबर को इंदिरा गांधी की हत्या के बाद पैदा हुआ था.

पिछले तीन दिनों में हज़ारों सिखों को मौत के घाट उतार दिया गया था. कई गंभीर रूप से ज़ख्मी हो गए थे. कई औरतें विधवा हो गई थीं. बच्चे अनाथ तो लोग बेघर हो गए थे. प्राय: सभी बड़े राज्यों और शहरों- दिल्ली, उत्तर प्रदेश में कानपुर और गाज़ियाबाद, बिहार में पटना और बलिया , हरियाणा, महाराष्ट्र आदि में बेघरों और असुरक्षितों के लिए शरणार्थी कैंप स्थापित किए गए.

मुझे आज भी याद है, कि मैं दिल्ली के लाजपत नगर के एक शरणार्थी कैंप में गया था. तब मैं बच्चा था और मुझे यह भी अच्छी तरह याद है कि उस इलाक़े में हत्याएं और बर्बादी कम हुई थीं, क्योंकि पंजाबी हिंदुओं ने सिखों की रक्षा की थी. मेरी मां और उनकी मित्र दूसरे हज़ारों कार्यकर्ताओं की तरह कैंप के लिए मदद पहुंचाती थीं. जिन्होंने इस नरसंहार में अपना सब कुछ खो दिया था उनके लिए खाना, गर्म कपड़ों और दवाओं की व्यवस्था करती थीं. यह बताना बहुत ज़रूरी है, क्योंकि जब यह नरसंहार हो रहा था उस वक़्त भी बहुत सिख ऐसे भी थे, जिन्हें अपने पड़ोसियों से मदद मिली थी. जो शरणार्थी हो गए थे, उन्हें पुनर्वासित करने के लिए बहुत से लोग सामने आए थे- ये लोग ऐसे हीरो थे जिन्होंने हज़ारों की जान बचाई. ख़ैर, इस घटना के इस पहलू पर हम बाद में विस्तार से चर्चा करेंगे.

सिखों के विरुद्ध भड़की हिंसा शहरों तक ही सीमित नहीं थी. सिखों को ट्रेन से खींचकर हत्या की गई थी. सिखों के हज़ारों ट्रकों, बसों और टैक्सियों को आग के हवाले कर दिया गया. दरअसल, एक ऐसी ही मिसाल जो अब तक कहीं रिपोर्ट नहीं हुई है वह पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से जुड़ी है. वह उस समय अशोक रोड में रह रहे थे. जब उन्हें पता चला कि उपद्रवी उनके आसपास रहने वाले कई सिख चालकों को उनकी टैक्सियों में जलाने के लिए आमादा हैं, तो उन्होंने आगे बढ़कर उनकी जान बचाई और उन्हें अपने सरकारी आवास में शरण दी. उन्होंने

सभी फोटो-प्रभात पाण्डेय

यह सब उस क्षेत्र के एसीपी की इस चेतावनी के बावजूद किया कि अगर उपद्रवियों ने उन पर हमला किया तो पुलिस उन्हें नहीं रोक पाएगी. ग़ौरतलब है कि उपद्रवी यूथ कांग्रेस ऑफिस में जमा हुए थे, जो अशोक रोड में वाजपेयी के घर के ठीक सामने था.

आख़िरकार चार नवंबर तक दिल्ली में नरसंहार की गति धीमी पड़ गई. यह कांग्रेस सरकार की कार्रवाई के कारण हुई. बहुत देरी के बाद आख़िरकार सेना को पूरी दिल्ली में तैनात कर दिया गया. स्पष्ट रूप से अपनी शक्ति दिखाने और नरसंहार के अपराधियों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई का दिखावा कर सरकार ने दिल्ली की सड़कों पर टैंक दौड़ा दिए.

यह सब उस अंतरराष्ट्रीय प्रेस के लिए था, जो सिखों के नरसंहार को कवर कर रहा था. अब यह दिल्ली पुलिस की ज़िम्मेदारी थी कि वह जांच कर सबूत इकट्ठा करे और दोषियों को सामने लाए. हालांकि यहां स्पष्ट विरोधाभास की स्थिति थी. यह वही पुलिस थी जिसने अबतक कोई कार्रवाई नहीं की थी, ठीक वैसे ही जैसे जब रोम जल रहा था तब नीरो बांसुरी बजा रहा था. ऐसे में पुलिस से न्याय की उम्मीद कैसे की जा सकती थी, जो लोगों की रक्षा करने में ही विफल रही थी, जिसके ख़ुद के अधिकारी इस नरसंहार के लिए ज़िम्मेदार थे. कांग्रेस किसी भी क़ीमत पर जांच के पक्ष में नहीं थी, क्योंकि इस नरसंहार में उसके कार्यकर्ताओं पर शामिल होने के सीधे आरोप लग रहे थे. जांच करने वाले वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के अनुसार, शुरुआती दिन सबूत एकत्रित करने, बयान लेने, पीड़ितों का प्रोफाइल इकट्ठा करने और दोषियों की पहचान के लिए काफी महत्वपूर्ण थे. लेकिन दिल्ली पुलिस ने काफी शिथिलता बरती. एफआईआर तभी दर्ज़ होती थी, जब काफी दबाव पड़ता था. उसके बाद भी जांच नहीं होती थी. ग़ैर-आधिकारिक रूप से यह बहाना बनाया गया कि इंदिरा गांधी के अंतिम संस्कार में आए विदेशी मेहमानों की सुरक्षा -व्यवस्था में दिल्ली पुलिस लगी थी. उसके बाद बहाना बदल गया और आने वाला चुनाव मुख्य मुद्दा बन गया.

इस तरह से पुलिस, प्रशासन और सरकार ने उन्हें बचाया, जो हज़ारों लोगों के मौत के लिए ज़िम्मेदार थे. मैंने अपने पहले लेख में यह बताया था कि अकेले दिल्ली में 25 साल बाद भी सिर्फ़ 16 लोगों को तीन हज़ार सिखों के मौत का दोषी पाया गया.

जांच के नाम पर ज़मींदोज़ हो गई सच्चाई !

दिल्ली में 1984 में हुए सिख दंगे के लिए कई सवाल ऐसे हैं, जिनके जवाब आज तक नहीं मिले. क्या किसी ने देखा कि इस घटना में संपूर्ण रूप से क्या हुआ? क्या किसी की ज़िम्मेदारी निश्चित की गई? क्या इसके लिए सरकार ज़िम्मेदार थी?

दरअसल, सिख नरसंहार एक उदाहरण है कि कैसे सरकार ने इस मामले को लेकर लोगों को भ्रमित किया. सिख दंगे की जांच के लिए कई आयोगों का गठन हुआ. सिख दंगे की जांच को बने अंतिम आयोग, जिसकी अध्यक्षता न्यायाधीश जीटी नानावती कर रहे थे, ने नौ फरवरी 2005 को अपनी 185 पेज की रिपोर्ट तत्कालीन गृह मंत्री शिवराज पाटिल को सौंपी थी. इस रिपोर्ट को 8 अगस्त 2005 को संसद में रखा गया. वैसे अब तक दस आयोग और समितियों ने इस दंगे की जांच की है. नीचे उन आयोगों को क्रमबद्ध तरीक़े से सूचीबद्ध किया गया है, जिनमें बहुत से मुख्य आरोपी बच गए.

मारवाह आयोग

इस आयोग का गठन नवंबर 1984 में हुआ. एडिशनल पुलिस कमिश्नर वेद मारवाह को नवंबर 1984 के सिख दंगे के दौरान पुलिस की भूमिका की जांच के लिए नियुक्त किया गया. बहुत से दोषी पुलिस अधिकारी दिल्ली हाई कोर्ट गए. जैसे ही वेद मारवाह 1985 के मध्य में अपनी जांच पूरी की, उन्हें अचानक गृह मंत्री ने जांच रोकने का निर्देश दे दिया. मारवाह आयोग की रिपोर्ट सरकार ने ले ली और बाद में इस रिपोर्ट को मिश्रा आयोग को हस्तांतरित कर दिया गया. हालांकि इस रिकॉर्ड का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा मारवाह द्वारा हस्तलिखित नोट था, जिसमें महत्वपूर्ण जानकारी थी, जिसे मिश्रा आयोग को हस्तांतरित नहीं किया गया.

मिश्रा आयोग

मिश्रा आयोग का गठन मई 1985 में हुआ था. रंगनाथ मिश्रा सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश रह चुके थे. न्यायाधीश मिश्रा ने अगस्त 1986 में अपनी रिपोर्ट सौंप दी और जनता के सामने यह रिपोर्ट छह महीने बाद फरवरी 1987 को आई. न्यायाधीश मिश्रा ने कहा कि किसी व्यक्ति की पहचान करना उनका काम नहीं है और उन्होंने तीन समितियों के गठन की सिफ़ारिश कर दी. इस आयोग को सिर्फ़ एक ही काम सौंपा गया था कि वह यह तय करे कि हिंसा संगठित या असंगठित तौर पर हुई. इस आयोग और उसकी रिपोर्ट की काफी आलोचना हुई. न्यायाधीश मिश्रा पर नेताओं को बचाने का आरोप लगा.

कपूर-मित्तल समिति

दरअसल कपूर-मित्तल समिति का गठन मिश्रा आयोग की सिफ़ारिश (पुलिस की भूमिका की जांच) पर फरवरी 1987 में हुई. हालांकि इस बात की जांच मारवाह आयोग ने 1985 में ही पूरी कर ली थी, लेकिन तब उसे अचानक रोक दिया गया था. अब दो साल बाद इस नई समिति का गठन उसी उद्देश्य के लिए किया गया था. इस समिति में न्यायाधीश दिलीप कपूर और उतर प्रदेश के सेवानिवृत्त सचिव कुसुम मित्तल थीं. उन्होंने अपनी रिपोर्ट 1990 में सौंपी. 72 पुलिस अधिकारियों की पहचान ड्यूटी में लापरवाही बरतने वालों के तौर पर हुई. इस समिति ने 72 में 30 पुलिस अधिकारियों को तुरंत बर्ख़ास्त करने की सिफ़ारिश की. यह दूसरी बात है कि आज तक एक भी पुलिस अधिकारी को सज़ा नहीं हुई.

जैन-बनर्जी समिति

यह समिति भी मिश्रा आयोग की सिफ़ारिश पर ही बनी थी. इसे मामलों के रजिस्ट्रेशन के लिए बनाया गया था. इस समिति में दिल्ली हाई कोर्ट के पूर्व जज एमएल जैन और सेवानिवृत्त आईजी एके बनर्जी शामिल थे. इस समिति की पहल पर बहुत अधिक मुक़दमे दर्ज़ नहीं हुए, जबकि पीड़ितों ने कई नेताओं और पुलिस अधिकारियों के नाम लिए थे. इस समिति ने अगस्त 1987 में सज्जन कुमार के ख़िलाफ़ केस दर्ज़ करने की सिफ़ारिश की, लेकिन ऐसा नहीं हुआ. नवंबर 1987 में अख़बारों में बहुत सी ख़बरें आईं कि समिति की सिफ़ारिश के बाद भी केस दर्ज़ नहीं हुए. दिसंबर 1987 में सज्जन कुमार ने सह- आरोपी ब्रह्मानंद गुप्त के साथ दिल्ली हाईकोर्ट में एक रिट याचिका दायर की और समिति के विरुद्ध स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया. सरकार ने इस स्थगन का विरोध नहीं किया. सिटीजन जस्टिस कमेटी ने इस स्थगन को ख़त्म करने के लिए एक अर्जी दायर की. इस रिट याचिका पर अगस्त 1987 में विचार किया गया और हाई कोर्ट ने इस कमेटी के गठन को रद्द कर दिया. सिटीजन जस्टिस कमेटी ने सुप्रीम कोर्ट में एक अपील दायर की.

पोटी-रोशा समिति

पोटी रोशा समिति का गठन वीपी सिंह सरकार द्वारा मार्च 1990 में हुआ. इसने जैन -बनर्जी समिति के उत्तराधिकारी के रूप में काम किया. 1990 में पोटी-रोशा समिति ने सिफ़ारिश की कि पीड़ितों के हलफनामे के आधार पर मुक़दमे दर्ज़ किए जाएं. इनमें से एक मुक़दमा सज्जन कुमार के ख़िलाफ़ था . सीबीआई की टीम आरोप तय करने के लिए सज्जन कुमार के घर गई. उनके समर्थकों ने उन्हें बंद कर दिया. उन्हें धमकी दी गई कि अगर उनके नेता पर साज़िश रचने का आरोप लगाया तो सीबीआई वालों को नुक़सान पहुंचाया जाएगा. इस वजह से जब सितंबर 1990 में पोटी-रोशा का कार्यकाल समाप्त हो गया, तो उन्होंने जांच को छोड़ ही दिया.

नानावती आयोग

नानावती आयोग का गठन संसद से पारित प्रस्ताव के बाद हुआ. इस आयोग की अध्यक्षता सुप्रीम कोर्ट के सेवानिवृत्त न्यायाधीश जीटी नानावती ने की. इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट फरवरी 2004 में सौंपी. इस आयोग ने कांग्रेस नेता जगदीश टाइटलर, सज्जन कुमार और एचकेएल भगत के ख़िलाफ़ उपद्रवियों को भड़काने के साक्ष्य होने का दावा किया. इस आयोग ने पुलिस कमिश्नर एससी टंडन को इस दंगे के लिए सीधे तौर पर ज़िम्मेदार ठहराया. टाइटलर और कांग्रेस नेताओं की भूमिका के बारे में साफ तौर से कुछ नहीं बताने के कारण इस रिपोर्ट की काफी आलोचना हुई. इस रिपोर्ट का असर कैबिनेट से जगदीश टाइटलर के इस्तीफे से हुआ. जैसा कि आप देख सकते हैं कि आयोग दर आयोग करोड़ों रुपये ख़र्च हुए, लेकिन कुछ भी हासिल नहीं हुआ. हमें इन्हें याद रखना ज़रूरी है, क्योंकि दोषी को सज़ा दिलाना एक जटिल प्रक्रिया बनी हुई है. वह भी तब, जब पुलिस के पास दोषी के ख़िलाफ़ सबूत हैं. हमारी न्यायिक प्रक्रिया की जो प्रकृति है, उसमें पुलिस को ठोस सबूतों और प्रत्यक्षदर्शियों की आवश्यकता है, तभी वह किसी को दोषी ठहरा सकती है. 1984 नरसंहार के मामले में इस तरह का कोई क़दम पुलिस द्वारा नहीं उठाए गए. जानबूझकर क़ीमती समय बर्बाद किया गया. कहा जाता है कि एक झूठ को बार- बार दोहराया जाए तो वह सच बन जाता है. कांग्रेस अभी भी यही लकीर पीट रही है कि 1984 के दंगे प्रतिक्रिया के कारण हुए और वह कुछ नहीं कर सकी.

जैन-अग्रवाल समिति

1990 में बनी इस कमेटी में दिल्ली हाईकोर्ट के सेवानिवृत्त जज जेडी जैन और उत्तर प्रदेश के अवकाश प्राप्त डीजीपी डीके अग्रवाल थे. इसने एचकेएल भगत, सज्जन कुमार, धर्मदास शास्त्री और जगदीश टाइटलर के ख़िलाफ़ केस दर्ज़ करने की सिफ़ारिश की. इसने दिल्ली पुलिस के डिप्टी कमिश्नर के अधीन दो-तीन स्पेशल जांच टीमें बनाने की सलाह दी और सिफ़ारिश की कि इसका निरीक्षण एडिशनल पुलिस कमिशनर (सीआईडी) करें. साथ ही उन तीन विशेष अदालतों के कामकाज की समीक्षा हो, जो 1984 के दंगे से जुड़े मामलों के निपटारे के लिए बनी थीं, ताकि दिन-प्रतिदिन के आधार पर इसके मामले लिए जा सकें. इस समिति का कार्यकाल अगस्त 1993 में समाप्त हो गया. हालांकि इसने जिन मामलों को दर्ज़ करने की सिफ़ारिश की थी, उन्हें पुलिस ने दर्ज़ नहीं किया.

आहूजा समिति

आहूजा समिति वह तीसरी समिति थी, जिसकी सिफ़ारिश मिश्रा आयोग ने की थी . इसे दिल्ली में मौतों की संख्या सुनिश्चित करने का काम मिला था. इस समिति ने अपनी रिपोर्ट अगस्त 1987 में सौंपी, जिसमें अकेले दिल्ली में 2733 सिखों की हत्या के बारे में बताया गया.

ढिल्लों समिति

गुरुदयाल सिंह ढिल्लों की अध्यक्षता में यह समिति 1985 में बनी. इसने रिपोर्ट 1985 के अंत तक सौंप दी. उसकी सबसे बड़ी सिफ़ारिश ऐसे बिज़नेस या दुकानों को मुआवज़ा दिलाने की थी. इस कमेटी ने सिफ़ारिश की कि जितनी भी बीमा कंपनियां राष्ट्रीयकृत हैं, उन्हें क्षतिपूर्ति देने के लिए निर्देशित किया जाए. हालांकि सरकार ने इस सिफ़ारिश को स्वीकार नहीं किया और परिणामत: सभी बीमा कंपनियों ने मुआवज़ा के दावों को ख़ारिज़ कर दिया.

नरूला समिति

नरूला समिति का गठन दिसंबर 1993 में मदन लाल खुराना (दिल्ली सरकार) ने की. उसकी सिफ़ारिशों में से एक यह थी कि इस मामले में छूट पर मंज़ूरी के लिए केंद्र सरकार को मनाना. 1994 के मध्य में केंद्र सरकार ने कहा कि यह मामला उसके क्षेत्र का नहीं है और इस मामले को लेफ्टिनेंट गर्वनर के पास भेज दिया जाए. नरसिंह सरकार ने इसके लिए दो साल का वक़्त लगा दिया. इसने अपनी रिपोर्ट 1994 में सौंपी और एचकेएल भगत, सज्जन कुमार पर मामला दर्ज़ करने की सिफ़ारिश की. देर से ही सही, पर दिसंबर 1994 में सीबीआई ने आरोपपत्र दाख़िल कर दिया.

याद किए गए उदयन

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

पिछली 11 जुलाई को उदयन शर्मा के जन्मदिन के अवसर पर दिल्ली के कांस्टीट्यूशन क्लब के डिप्टी स्पीकर हाल में समारोह हुआ. *संवाद–2009* के नाम से आयोजित परिचर्चा में *लोकसभा चुनाव और मीडिया को सबक़* विषय पर वक्ताओं ने अपने विचार रखे. इस संवाद का आयोजन उदयन शर्मा ट्रस्ट की ओर से किया गया था. उदयन शर्मा ट्रस्ट की कर्ताधर्ता, उदयन जी की पत्नी नीलिमा शर्मा जी हैं. आयोजन में नीलिमा अपने सादे और सक्रिय अंदाज़ में मौजूद थीं. उदयन जी के जन्मदिन पर आयोजित इस परिचर्चा में उपस्थित पत्रकार मीडिया समूहों और उनके मालिकों के नैतिक पतन पर ख़ासे दुखी थे. इस पतन से उपजी स्थितियों से पत्रकार बेहद विचलित दिखे और इसे किसी भी तरह से बदलने की अपील की. इस परिचर्चा में संपादकों और पत्रकारों ने कंटेंट की ख़त्म होती पवित्रता, मीडिया समूहों की नष्ट होती विश्वसनीयता और ख़बरों की सौदेबाज़ी होने पर चिंता जताई. घपले–घोटाले की प्रवृत्ति के संस्थाबद्ध होते जाने से तथाकथित चौथे खंभे की प्रासंगिकता ख़त्म हुई है. उसी तरह पत्रकारिता दिन पर दिन जनता से दूर होती जा रही है. मीडिया समूह मानो किसी दुकान में तब्दील हो गए हैं, जहां केवल लाभ–हानि का हिसाब लगाया जाता है. यह नज़रिया बहुत जल्द दूर किए जाने की ज़रूरत है.

पत्रकारों के इस जमावड़े में माहौल तनावपूर्ण रहा. उदयन को याद करते हुए उपस्थित पत्रकारों ने मालिकों के बाज़ारू रवैए को जी भरकर कोसा. लाभ कमाने के लिए मीडिया समूहों को जिस तरह बेचा जा रहा है, उसके कारण पत्रकारिता और पत्रकारीय नैतिकता तार–तार हो गई है. समाज व देश के लिए थोड़ी भी चिंता रखने वाला पत्रकार आज क्षुब्ध हैं. उनके इसी रोष की अभिव्यक्ति इस मंच से हुई. जिन चंद लोगों ने पत्रकारों को नज़रिया बदलने की सलाह दी, उनको भी उन्हें पत्रकारों के गुस्से का शिकार बनना पड़ा.

वरिष्ठ पत्रकार और सीएनईबी के एडिटर–इन–चीफ राहुल देव ने संजीदगी और कुशलता के साथ इस संवाद का संचालन किया. इस संवाद में *पत्रकारिता की वर्तमान दशा* पर कई पत्रकारों ने अपने–अपने तरीक़े से दुख और पीड़ा व्यक्त की. इनमें शामिल थे–कुलदीप नैय्यर, संतोष भारतीय, पुण्य प्रसून वाजपेयी, अलका सक्सेना, नीलाभ, सीमा मुस्तफा, विनोद अग्निहोत्री. कार्यक्रम में मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल, जद–यू नेता शरद यादव व माकपा नेता सीताराम येचुरी के साथ ही चुनाव आयुक्त वाईएस कुरैशी ने भी अपनी बात रखी. कार्यक्रम में अख़बारों और चैनलों के कई छोटे–बड़े पत्रकार भी थे. इनमें प्रमुख हैं–अजीत अंजुम, सुप्रिय प्रसाद, मुकेश कुमार, राजेश बादल, जयशंकर गुप्त, रेणु मित्तल, वीरेंद्र सेंगर, बीबी नागपाल, आनंद प्रधान और संजय ब्रागटा इत्यादि.

संतोष भारतीय ने अपने संबोधन में उन संपादक सह मालिकों की खिंचाई की, जो संपादकीय के माध्यम से समाज को तो नैतिकता और आदर्श सिखाते हैं, लेकिन उनके ही संस्थान में अनाचार फैला होता है. संतोष भारतीय ने यह भी कहा कि हालत तो यह हो गई है कि अब ख़ुद को पत्रकार कहते हुए शर्म आती है.

संतोष भारतीय ने अपने संबोधन में उन संपादक सह मालिकों की खिंचाई की, जो संपादकीय के माध्यम से समाज को तो नैतिकता और आदर्श सिखाते हैं, लेकिन उनके ही संस्थान में अनाचार फैला होता है. संतोष भारतीय ने यह भी कहा कि हालत तो यह हो गई है कि अब ख़ुद को पत्रकार कहते हुए शर्म आती है. इसकी वजह यह है कि पत्रकारिता में भ्रष्ट और बेईमान लोग भर चुके हैं.

कोवर्ट की संपादक सीमा मुस्तफा ने कहा कि बाज़ार ने सबको अपने शिकंजे में कर लिया है. मीडिया भी बिकाऊ हो चला है. नेता अब मीडिया की परवाह नहीं करते, क्योंकि वे मीडिया को ही ख़रीद लेते हैं.

हिंदी *आउटलुक* के एडिटर नीलाभ मिश्र ने एक अच्छी सलाह दी. उन्होंने कहा कि पाठकों को यह अधिकार होना चाहिए कि वह अपने अख़बार के प्रकाशकों और संपादकों से पूछ सके कि उन्होंने जो ख़बर पाठक को दी है, वह दरअसल ख़बर नहीं विज्ञापन है. इस मिलावट के लिए क्यों न संपादक–मालिक पर चार सौ बीसी का मुक़दमा चलाया जाए?

पुण्य प्रसून वाजपेयी ने संपादकों से अपना स्टैंड तय करने को कहा. वाजपेयी ने कहा कि तय करना ही होगा कि वे बाज़ार के साथ हैं या फिर पत्रकारिता के साथ हैं.

पंकज पचौरी ने मीडिया और बाज़ार की रिश्तेदारी में नैतिकता के फांसी पर लटक जाने के तर्क गिनाए. उन्होंने बाज़ार को स्वीकारने, चैनल चलाने जैसे ख़र्चीले उपक्रम के लिए बाज़ाार पर निर्भर होने की बात समझाई. उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि इस समय देश में दो तरह का मीडिया चल रहा है.

प्रभात पाण्डेय
feedback.chauthiduniya@gmail.com

मीडिया वाच

ख़बरिया चैनलों की खलनायकी

गंगेश मिश्र

लो कर लो बात. जिस सूर्य देवता को हम सुबह–सुबह जल चढ़ाते हैं, वह तो ओसामा बिन लादेन से भी ख़तरनाक हैं.

घर आए एक अतिथि ने जब ऐसा कहा, तो किसी के समझ में कुछ नहीं आया. हमारी अज्ञानता का मज़ाक उड़ाते हुए उन्होंने लगे हाथ ज्ञानवर्धन भी कर दिया. संक्षेप में बात यह थी कि वह रोज़ सुबह ख़बरिया चैनलों पर आज का भविष्यफल देख कर ही दिन भर का कार्यक्रम तय करते हैं. इसी क्रम में उस दिन उन्होंने चैनलों पर 22 जुलाई के पूर्ण सूर्यग्रहण पर ज्योतिषियों और उनसे भी बड़े विद्वान की तरह धीर–गंभीर बने प्रस्तोता की राय जान निकले थे. वह इस बात पर हैरान थे कि जो पूरी दुनिया के लिए इतना घातक साबित हो सकता है, उसे लोग भगवान क्यों कहते हैं? अतिथि महोदय चैनल के एंकरों की तरह लगातार बोले चले जा रहे थे–सूर्यग्रहण पर बड़े विनाशों के प्रमाण भी हैं. वह भी विदेशों के, आदि–आदि. कहना न होगा कि विदेशी मामला बनते ही हमारे देश में कई तरह की कुंठाएं कैसे और किस हद तक शांत हो जाती हैं. ख़ैर, काफी देर तक बड़ों की बातचीत के बीच आतंकित–सा बैठे उनके ही लड़के ने कहा–डिस्कवरी देख लो न, वहां सूर्यग्रहण पर सब पता चल जाएगा.

इसके बाद उस बच्चे ने ग्रह–तारों की सारी जानकारी सुना डाली. हमारी पत्नियों ने भी कहा कि 1999 और उससे भी पहले 1995 में जब पूर्ण सूर्यग्रहण पड़ा था, तब हमने ज़िंदगी में पहली बार आसमान में रिंग बनते देखा था. कितना ख़ूबसूरत था न (पतियों की ओर मुख़ातिब हो वे सगाई की अंगुठियों की तुच्छता को साफ रेखांकित कर रही थीं) ! तब भी चैनल वालों ने बहुत डराया था. लेकिन कहीं तो कुछ हुआ नहीं!!

हमारी बातचीत लंच के साथ इस टेक पर ख़त्म हुई कि जिस–जिस की लोगों के बीच इज़्ज़त है, मीडिया वाले उन सबकी मिट्टी पलीद करके ही छोड़ेंगे. ख़बर तो हमारे–आपके नाम पर परोसते हैं, लेकिन हमारी–आपकी राय से एकदम विपरीत अपनी राय को साबित करने के लिए तथ्यों को सिर के बल खड़ा कर देते हैं. मुक्तिबोध ने लिखा है, बाहरी दृष्टि से सत्पथ पर ले जाने वाली निर्बुद्ध निष्ठा कुमार्ग पर ले जाने वाली स्वतंत्र बुद्धि की अपेक्षा अधिक हानिकारक है.

हैरानी तब और अधिक होती है, जब ऐसी ख़बरों पर उनसे सुर मिलाने वाले भी न जाने कहां से मिल जाते हैं. हमारे और हमारे किसी परिचित के यहां कभी कोई मीडिया वाला राय जानने नहीं पहुंचा है. उसी तरह, जैसे विभिन्न प्रोग्रामों की रेटिंग तय करने वाले हम में से किसी से भी आज तक नहीं टकराया है. इसलिए जितनी अबूझ चैनलों की मायावी ख़बरें हैं, उतना ही टीआरपी का निर्धारण. सवाल है कि ख़बरों के नाम पर समाज से लेकर आसमान तक से हमें डराया क्यों जाता है ? एक अपवाद जैसी घटना को इतना बढ़ा–चढ़ा कर पेश क्यों किया जाता है कि मानो हर परिवार में वैसा ही हो रहा हो? संभव है कि चैनल वालों के घरों में अपवाद जैसी ही घटनाएं होती हों, और उससे उत्पन्न भय को वे हम सबसे बांट कर ही दिल का बोझ हल्का कर रहे हों. ऐसा है, तो वे सहानुभूति के पात्र हैं. नहीं, तो केबल वाले से एक–एक पाई वसूल लेने वाले हमारे–आपके जैसे दर्शक तो निश्चय ही दया के पात्र हैं.

हैरानी तब और अधिक होती है, जब ऐसी ख़बरों पर उनसे सुर मिलाने वाले भी न जाने कहां से मिल जाते हैं. हमारे और हमारे किसी परिचित के यहां कभी कोई मीडिया वाला राय जानने नहीं पहुंचा है. उसी तरह, जैसे विभिन्न प्रोग्रामों की रेटिंग तय करने वाले हम में से किसी से भी आज तक नहीं टकराया है.

हम तो आज तक यही समझते थे कि बड़ी ख़बर वह होती है, जो अधिक लोगों से सरोकार रखती हो. नवविवाहित बेटे–बहू के शारीरिक संबंधों में दिलचस्पी रखने वाली कोई विधवा हर घर में तो होती नहीं. एक की मानसिक विकृति को व्यापक विस्तार देने के पीछे आख़िर किस तरह की मानसिकता काम करती है. क्या वह उस विधवा की मानसिकता से अलग हो सकती है. कतई नहीं. इस तरह की ख़बरों को दिन भर चला कर दिखाने वाले हमारे–आपके अंदर प्राकृतिक रूप से बैठी यौन भावनाओं को जगाते हैं, ताकि रात के अंधेरे में अपराध और सेक्स संबंधी ख़बरों के लिए पहले से मौजूद सनसनी उनकी टीआरपी बढ़ाती चले.

इस सिलसिले में उनका तर्क तो उनकी ख़बरों से भी ख़तरनाक हैं. उनके मुताबिक, जो समाज में घटेगा वही तो दिखाएंगे. लेकिन दुर्भाग्य से यह इतना आसान नहीं है. यह एकदम सरल भी नहीं है. अगर ऐसा होता, तो आज हमारा मीडिया वैसा जड़ पुंज नहीं होता, जैसा कि वह है. समस्या केवल समकालीन लोगों के जीवन को दिखाने की नहीं है. बल्कि समस्या उससे भी अधिक जटिल यह है कि आप यथार्थ के संदर्भ में उनके जीवन को देखते कैसे हैं. इंग्लैंड में पिछले दिनों एक तेरह वर्षीय किशोर के पिता बन जाने की ख़बर उछली थी, जो बाद में ग़लत निकली. हां, अपने से दो साल बड़ी लड़की से शारीरिक संबंध की बात सच ज़रूर निकली. लेकिन दिन भर विदेशी प्रोग्रामों की नक़ल करने वाले चैलन वालों ने क्या कभी ख़ुद भी बीबीसी या कहीं और उसे दिन भर चलते देखा. कतई नहीं. बावजूद इसके, भारत में ख़बरिया चैनलों ने रस ले–लेकर बार–बार दिखाते रहे. जबकि वहां के चैनलों में यह मामला आया भी तो एक समस्या की तरह कि इतने कम उम्र में सेक्स संबंध बनाने वाले बच्चों की परवरिश में मां–बाप कोताही बरत रहे हैं.

अभी–अभी शिवसेना की ओर से बयान आया है कि सत्ता में आने पर हम दूसरे राज्यों के नागरिकों को महाराष्ट्र में नहीं आने देंगे. इस बयान को ख़ूब हवा दी गई. जबकि सब जानते हैं कि यह चुनावी बयान है. महाराष्ट्र विधानसभा का चुनाव आने वाला है, इसलिए भावनाएं भड़का कर चुनावी मैदान में टीआरपी (टेलीविज़न रेटिंग प्वाइंट) की तर्ज़ पर पीआरपी (पॉलिटिकल रेटिंग प्वाइंट) बढ़ाने की चाल है. फिर भी चैनल वाले इसे तूल दे रहे हैं. यह कहते हुए कि इस तरह के ख़यालात वालों को बेनक़ाब कर रहे हैं. हालांकि आशंका यही है कि इसकी भी अंतिम परिणति पिछली बार की तरह हिंसा में ही होगी. अब यहीं इनकी ईमानदारी कठघरे में आ जाती है. पिछले साल महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना (एमएनएस) के नेता राज ठाकरे के साथ भी तो यही खेल खेल कर इन लोगों ने संसदीय चुनाव में उनका वोट बैंक बढ़ा दिया था. कुछ साधु–संतों के बीच वरुण गांधी के एक बयान को दोहरा–दोहरा कर पीलीभीत संसदीय क्षेत्र में हारा हुआ चुनाव जितवा दिया था. ऐसी हरक़त समाज सेवा नहीं, बल्कि उसके साथ मुखौटा लगा कर की गई खलनायकी है.

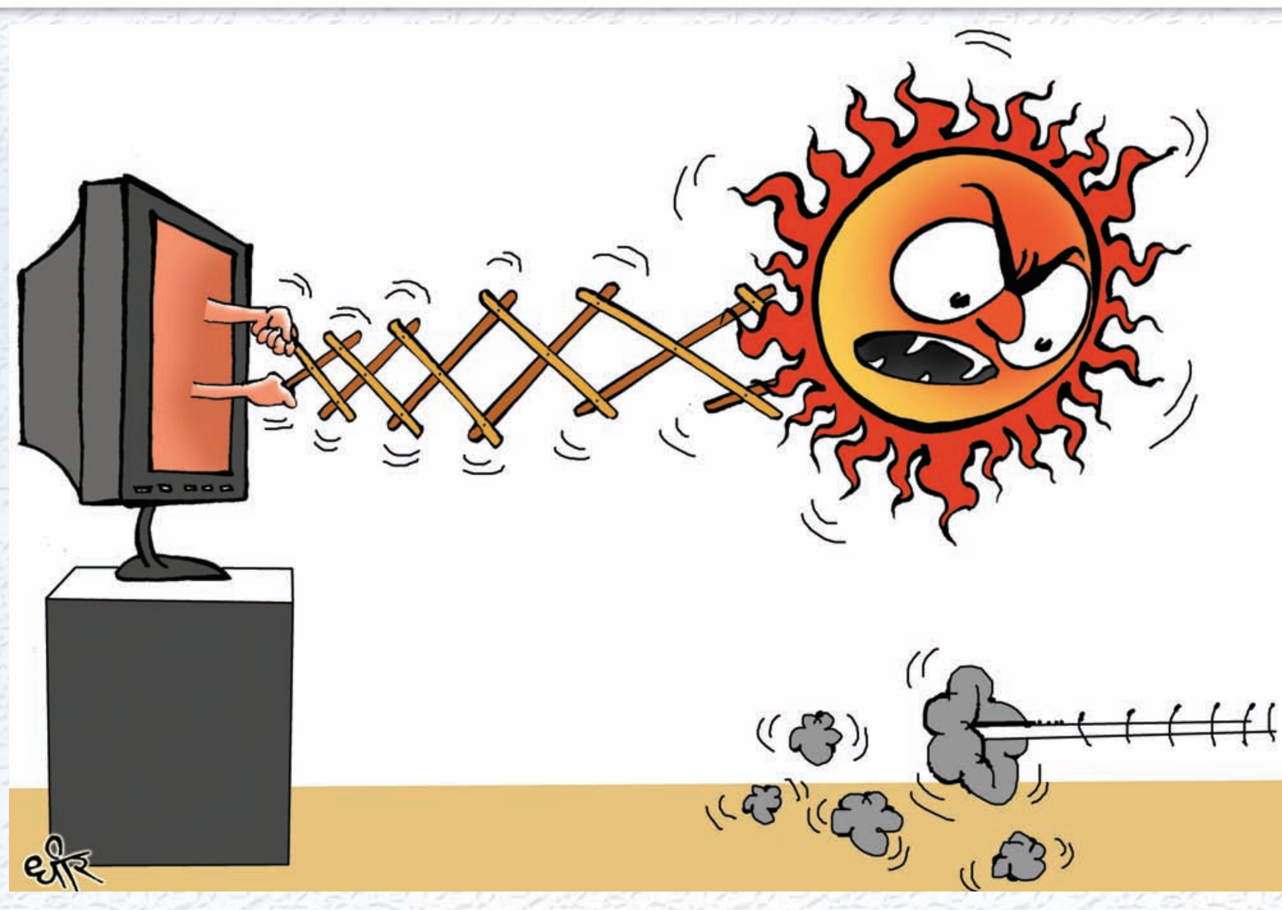

feedback.chauthiduniya@gmail.com

बदलते बिहार पर विश्व बैंक की मुहर

कुशासन के लिए हाल तक कुख्यात रहे बिहार में सचमुच कायापलट हो गया लगता है. जो प्रांत पूरे देश में अपनी दुर्गतियों के लिए दाग़दार बना था, सुधार में आज उसकी मिसालें दी जाने लगी हैं. किसी राजनीतिक दल या किसी नितांत ठेठ बिहारी की ओर से नहीं, बल्कि विश्व बैंक से. जी हां, जिस बिहार के नाम से देश के दूसरे भागों में लोगों की शक्लें बिगड़ जाती थीं, उसकी गिनती कारोबार के लिहाज़ से भारत के 17 अनुकूल राज्यों में की गई है. वजहें बड़ी हैं या छोटी, यह कोई मायने नहीं रखता. महत्वपूर्ण यह है कि संसाधनों में उपेक्षित किया गया यह प्रदेश आज अपनी सकारात्मक छवि से जाना जाने लगा है. इतना कि कारोबार शुरू करने के लिहाज़ से बिहार की राजधानी पटना को मुंबई, चेन्नई और कोलकाता जैसे शहरों से अच्छा माना जाने लगा है.

दरअसल विश्व बैंक की एक शाखा अंतरराष्ट्रीय वित्त निगम (आईएएफसी), भारतीय वाणिज्य मंत्रालय और भारतीय उद्योग परिसंघ ने मिल कर एक रिपोर्ट तैयार की है. भारत में कारोबार परिचालन 2009 (डुइंग बिज़नेस इन इंडिया 2009) नाम की यह रिपोर्ट पिछले दिनों जारी की गई. इस रिपोर्ट में भारत के उन 17 शहरों को चुना गया है, जो बिज़नेस शुरू करने के लिहाज़ से बेहतर हैं. इसके मुताबिक मुंबई में जहां सबसे कम समय में कारोबार शुरू किया जा सकता है, वहीं पटना में कारोबार चलाना सबसे सस्ता है. ज़ाहिर है, वहां मुंबई के मुक़ाबले ज़मीन से लेकर श्रम तक सब सस्ता है. बावजूद इसके, पटना में कारोबार लायक माहौल समझा जाना ही बड़ी बात है. इसलिए कि आज से तीन-चार साल पहले तक उस शहर को रहने लायक तक मानने से लोग इंकार करने लगे थे. लेकिन क़ानून-व्यवस्था की स्थिति काफी हद तक सुधर जाने से बात ही कुछ और हो गई है. वैसे कर चुकाने जैसे अहम मसलों को बिहार सरकार ठीक कर ले, तो पटना कई और शहरों से भी आगे निकल सकता है.

बहरहाल, इस रिपोर्ट में शामिल 17 शहरों में पटना को 14वें तो चेन्नई को 15वें और कोलकाता को सबसे आख़िरी 17वें पायदान पर रखा गया है. मुंबई 16वें नंबर पर रहा. वैसे आसान तरीक़े से कारोबार चलाने के लिहाज़ से रिपोर्ट में पहला स्थान जहां लुधियाना को मिला है, वहीं उसके बाद हैदराबाद, भुवनेश्वर, गुड़गांव, अहमदाबाद, नई दिल्ली, जयपुर और गुवाहाटी का स्थान है. जहां तक नया व्यवसाय शुरू करने की बात है, तो इस हिसाब से दिल्ली को औरों से कहीं बेहतर माना गया है, लेकिन ख़र्च के मद्देनज़र पटना को मुंबई से भी बेहतर बताया गया है.

शहरों का चुनाव सात आधारों पर किया गया, जिनमें बिज़नेस की शुरुआत, निर्माण (कंस्ट्रक्शन परमिट) से जुड़े मसले, प्रॉपर्टी का रजिस्ट्रेशन, कर चुकाना, सीमा के बाहर भी व्यवसाय की गुंजाइश और आसानी से कारोबार समेटना आदि शामिल थे. इन कसौटियों पर कसने के बाद विश्व बैंक ने कहा है कि मुंबई और नोएडा जैसे शहरों में बिज़नेस काफी जल्दी तो शुरू किया जा सकता है, पर पटना में व्यवसाय शुरू करना इन शहरों की तुलना में काफी सस्ता है. लुधियाना, जयपुर और नोएडा के बारे में बताया गया है कि इन शहरों में टैक्स के पेमेंट में काफी आसानी होती है. उधर, चेन्नई, कोलकाता और पटना में यह काम काफी मुश्किल भरा साबित होता है. बहरहाल, इसका स्वागत किया ही जाना चाहिए कि बिहार बदल रहा है. नीतीश सरकार के कामकाज से राज्य में एक अलग तरह का और सकारात्मक क़िस्म का मूड तो बना ही है. इस मूड का ही असर है कि राज्य से लगभग गुम हो गए पर्यटक फिर नज़र आने लगे हैं. बोधगया का विष्णुपद मंदिर, नालंदा और भागलपुर के विक्रमशिला में प्राचीन विश्वविद्यालय के अवशेष, लौरिया का नंदनगढ़, बांका का मंदार पर्वत, वैशाली का शांति स्तूप व वासोकुंड, सासाराम में शेरशाह का मक़बरा, पूर्वी चंपारण का केसरिया स्तूप, पश्चिम चंपारण का भितिहरवा आश्रम, नवादा का ककोलत जल प्रपात, मुंगेर की भीमबांध वन्य प्राणी आश्रयणी और बगहा में वाल्मीकि व्याघ्र परियोजना पर्यटकों को लुभाने लगे हैं. यही कारण है कि पिछले कुछ सालों में पर्यटकों की संख्या कई गुणा बढ़ गई है. 2000 में बिहार आने वाले देसी पर्यटकों की जो संख्या 55 लाख 93 हज़ार थी, वह 2006 में बढ़ कर एक करोड़ सात लाख तक पहुंच गई. 2008 आते-आते तो यह संख्या एक करोड़ 22 लाख से भी अधिक हो गई. अगर विदेशी पर्यटकों के लिहाज़ से देखें तो उन्हें भी बिहार अब ख़ूब रास आने लगा है. वर्ष 2008 में बिहार आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या साढ़े तीन लाख रही, जबकि 2003 में इनकी संख्या महज़ 60 हज़ार थी. बौद्ध सर्किट होने के कारण विदेशी पर्यटक विशेष रूप से गया, वैशाली और नालंदा में अधिक देखे गए.

ऐसे में केंद्र राजनीतिक भेदभाव की भावना से ऊपर उठकर थोड़ी मदद कर दे, तो बिहार देश में उसी तरह ख़ुशहाल हो सकता है, जिस तरह विश्व बैंक और दूसरे वैश्विक वित्तीय संगठनों की मदद से विश्व मंच पर भारत दिन प्रति दिन मज़बूत होता जा रहा है. यह किसी से छिपा नहीं है कि पहले से ही संसाधनों की कमी झेल रहे बिहार की हालत बंटवारे के बाद कैसी रह गई है. प्रति व्यक्ति आय से लेकर ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या तक में सुधार की बहुत गुंजाइश है. इसलिए आरोप-प्रत्यारोप को किनारे कर केंद्र को उसके विकास में लगना ही होगा. बिहार को अलग-थलग कर देश का विकास नहीं हो सकता.

यहां ध्यान देने की बात है कि बिहार की छवि ख़राब होने का कारण लोग अमूमन राजनीति को मानते हैं. यह आधा ही सच है, क्योंकि स्वार्थपरक राजनीति ने सिर्फ़ बिहार का नहीं, पूरे देश का नाश किया है. इसलिए सच का दूसरा भाग भाषायी है. बिहार अगर आज तक बदनामी झेल रहा है तो राजनीति से अधिक सिर्फ़ और सिर्फ़ भाषायी कारणों से. वह भी अंग्रेजी नहीं, हिंदी के कारण. अंग्रेजी भाषियों को तो मेट्रोपोलिटन शहरों को छोड़ पूरे देश से ही परेशानियां रही हैं, लेकिन हिंदी की बात करें, तो उसने उसे बहुत छला है. इसलिए कि अहिंदी भाषी होते हुए भी एक तो बिहार पर हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास की महती ज़िम्मेदारी थोप दी, दूसरे उसे इसका श्रेय देने के बजाय हमेशा हिकारत से ही देखा. समय गवाह है कि *धर्मयुग* से लेकर *रविवार*, *सारिका* और *साप्ताहिक हिन्दुस्तान* जैसी न जाने कितनी पत्रिकाएं अपने अंतिम दिनों में भी शुद्ध हिंदी बोलने वाले प्रदेशों से अधिक बिहार में बिकती रहीं. कितनी अजीब बात है कि मैथिली, भोजपुरी और मगही जैसी समृद्ध मातृभाषाओं के बावजूद हिंदी को उत्साह से आत्मसात करने वालों को हिंदी के उन शुद्धतावादियों ने हमेशा हाशिए पर रखा, जिन्होंने अंग्रेजीदां बनने के लिए ईमान को सबसे पहले गिरवी रख दिया. इसमें अन्य प्रदेशों के हिंदी के तमाम बड़े साहित्यकारों ने तो ग़ज़ब की खलनायकी की. मोटे-मोटे भाषा वैज्ञानिक कारणों के होते हुए भी उन्होंने यह सिद्धांत कभी स्थापित नहीं होने दिया कि बंगाल, पंजाब और हरियाणा आदि राज्यों की तरह ही बिहार में हिंदी स्कूल जाने के उम्र में सीखी जाती है. इसलिए सीखी हुई भाषा का जैसा स्वरूप होता है, वह वहां है. इसमें लालू प्रसाद का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहा. शुद्धतावादियों की साज़िश देखिए कि जिस आंदोलन से लालू निकले उसके नेता जयप्रकाश नारायण को मुख्यधारा की ज़ुबान से घिस-घिस कर साफ कर दिया. फिर मीडिया के हाथों नेता से किस तरह और किस दिन मसखरा बना दिए गए लालू, यह उन्हें आज तक पता नहीं चला. चरवाहा विद्यालय की मौलिक अवधारणा देने वाला अचानक होली पर होने वाले महामूर्ख सम्मेलनों का नायक जैसा बन गया. महाठगिनी मीडिया की माया के मकड़जाल में लालू का अंत किसी ग्रीक ट्रैजिडी से कम नहीं है.

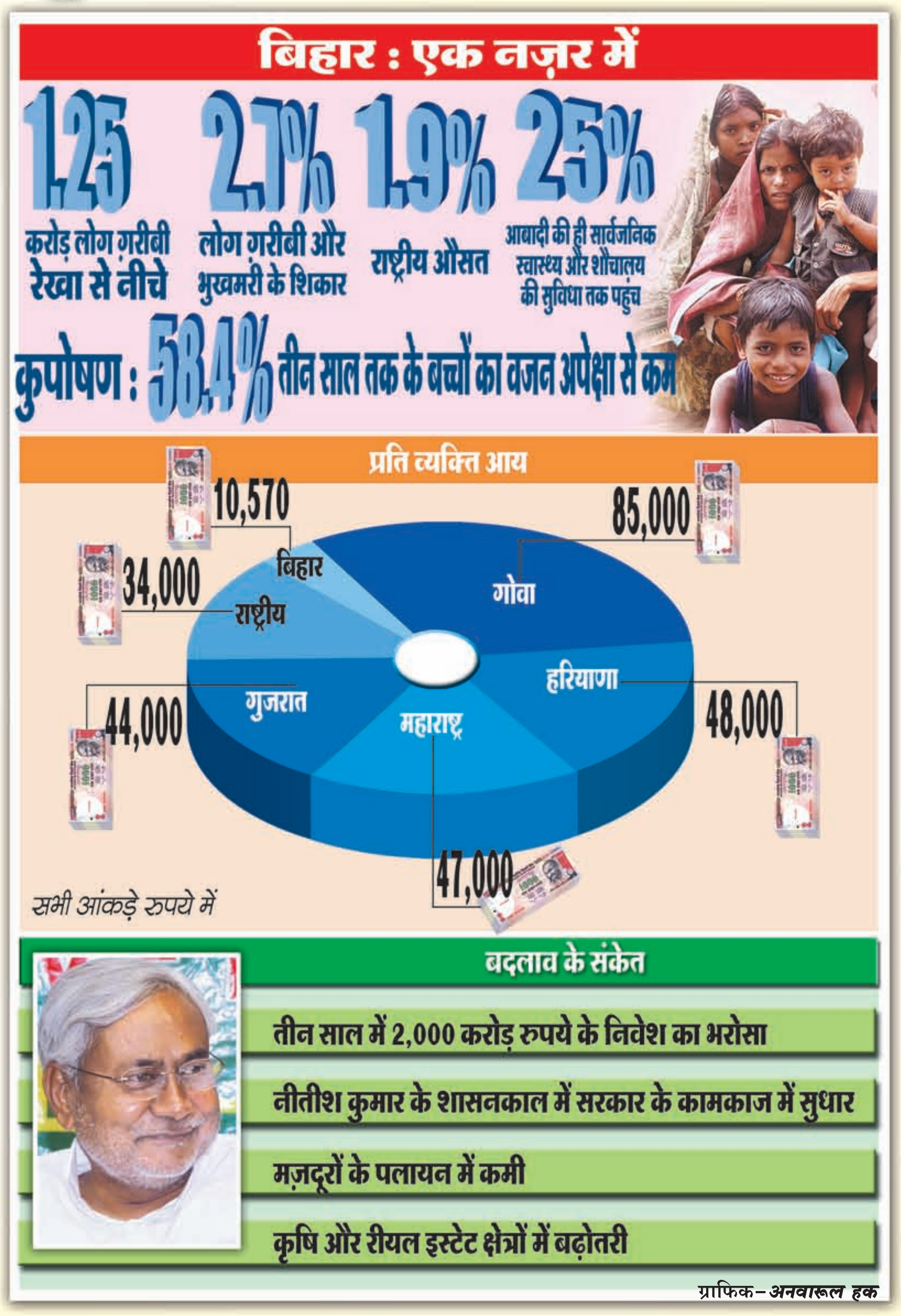

गंगेश मिश्र
feedback.chauthiduniya@gmail.com

ऑनलाइन पिंडदान का विरोध

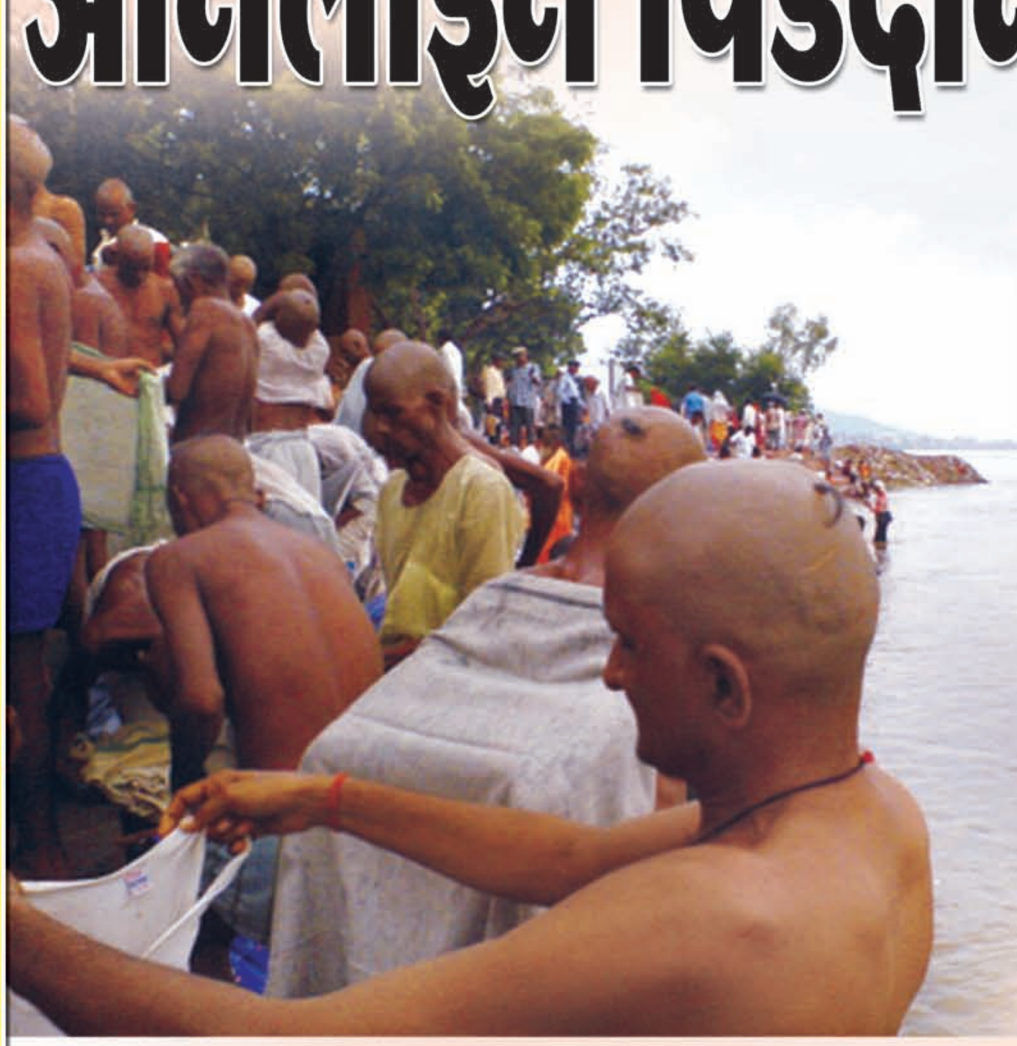

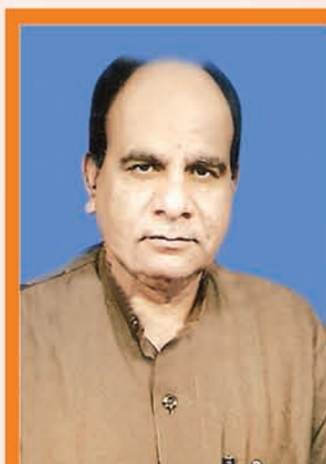
डॉ. महेश लाल ग़ायब

गयाधर लाल जी कटरियार

बिमलेश झा

ज़माना हाई-टेक का है, इसलिए अब आत्मा की शांति भी हाई-टेक तरीक़े से होगी. यानी पितरों के लिए पिंडदान भी अब आप ऑनलाइन कर सकेंगे. अगर आप सात समंदर पार हैं और पुरखों को मोक्ष दिलाने के लिए गया में पिंडदान करना चाहते हैं, तो चिंता की कोई बात नहीं है. अब आप वहीं से थोड़े से ख़र्च में गया में पिंडदान का लाभ उठा सकते हैं. इतना ही नहीं, वीडियो कांफ्रेंसिंग के ज़रिए आप अनुष्ठान के साक्षी भी रहेंगे. यह पैकेजिंग पर्यटन विभाग की है.

हालांकि पंडों ने बिहार सरकार के इस फ़ैसले का विरोध शुरू कर दिया है. शहर के पंडों का कहना है कि सिर्फ़ वही पिंडदान पितरों की आत्मा को शांति दिला सकता है, जिसमें उसके परिजन सशरीर गया में मौजूद हों. इस लिहाज़ से ऑनलाइन पिंडदान कराने का सरकार का फ़ैसला, न तो शास्त्र सम्मत है और न ही पिंडदान करने वालों के और पिंडदान कराने वालों के हक़ में ही है. गया के पंडों ने सरकार के इस फ़ैसले को पुरातनकाल से चली आ रही धार्मिक मान्यताओं और रीति-रिवाजों पर आक्रमण करार दिया है. पिंडदान कराने वाले एक पुजारी गयाधर लाल जी भेदी ने कहा कि मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि सरकार ने ऑनलाइन पिंडदान शुरू क्यों किया. यह संभव नहीं है, क्योंकि पिंडदान करते समय सशरीर मौजूद रहना बहुत ही ज़रूरी है.

डॉ. महेश लाल ग़ायब ने कहा कि यह उन लोगों के दिमाग़ की उपज़ है जो धार्मिक मान्यताओं और रीति रिवाजों के बारे में कुछ भी नहीं जानते. उन्होंने कहा कि अमेरिका या यूरोप में बैठा एक व्यक्ति ऑनलाइन पिंडदान कर तो सकता है, लेकिन उससे उसके पितरों की आत्मा को शांति नहीं मिल सकती है. यह काम गया में आकर ही संभव है. पवित्र फल्गू नदी के किनारे बसा यह (गया) शहर हजारों वर्षों से करोड़ों लोगों के पितरों की आत्मा को मुक्ति दिला चुका है. गयापाल समाज (पंडों) ने इस फ़ैसले का कड़ा विरोध किया है. उन्होंने कहा कि यह धर्म और संस्कृति के ख़िलाफ़ है. गयाधर लाल जी कटरियार ने बताया कि इस संबंध में जिलाधिकारी के साथ बैठक हुई थी. उसमें पर्यटन विभाग के अधिकारी भी मौजूद थे. बैठक में पर्यटन विभाग के अधिकारी ने कहा कि उनकी सहमति के बिना ऐसा कुछ भी नहीं होगा. उन्होंने कहा कि गया में जो विष्णु चरण है उसके स्पर्श मात्र से ही पितरों को मोक्ष मिलता है, लेकिन जो गया नहीं आएंगे वे इससे वंचित रह जाएंगे.

पौराणिक मान्यता के अनुसार गया वह स्थान है, जहां पिंडदान करके लोग अपने पितरों की आत्मा को शांति दे सकते हैं. ऐसा कहा जाता है कि भगवान राम और उनकी पत्नी सीता ने राजा दशरथ की आत्मा की शांति के लिए गया में ही पिंडदान किया था.

गया में पितृपक्ष मेला इस बार तीन सितंबर से शुरू हो रहा है, जो 18 सितंबर तक चलेगा. इस मौके पर देश-विदेश से आए लोग अपनी मान्यता के हिसाब से पिंडदान करते हैं, ताकि उनके पूर्वजों की आत्मा को शांति और मुक्ति मिल सके.

एक अनुमान के मुताबिक क़रीब आठ लाख तीर्थयात्री इस मेले में भाग लेंगे. बिहार के उप मुख्यमंत्री सुशील कुमार मोदी ने मेले की तैयारी का जायज़ा लेने के बाद बताया कि विदेशों में बसे भारतीय अब क्रेडिट कार्ड के ज़रिए निर्धारित शुल्क अदा कर वीडियो कांफ्रेंसिंग से विदेश में घर बैठे ही पिंडदान और पूजा में शामिल हो सकते हैं. राज्य सरकार का पर्यटन विभाग ऑनलाइन पूजा की व्यवस्था का काम करेगा. पर्यटन विभाग इस साल इस मेले के मौके पर तीर्थयात्रियों के लिए पिंडदान पूजा का विशेष पैकेज पेश करने जा रहा है. इनमें यात्रा, विश्राम, पूजा, भ्रमण आदि की सारी सुविधाएं रहेंगी. विदेशों में रहने वाले लोगों के लिए वीडियो कांफ्रेंसिंग के ज़रिए पिंडदान की व्यवस्था करेगी. राज्य सरकार का मानना है कि वीडियो कांफ्रेंसिंग के माध्यम से पिंडदान करने वाला व्यक्ति अपनी शारीरिक मौजूदगी ज़ाहिर कर सकता है. पितृपक्ष मेले के मौके पर 35 कमरों वाला आधुनिक सुविधाओं से लैस पर्यटन विभाग का निर्माणाधीन विष्णु बिहार होटल यात्रियों के स्वागत के लिए बनकर तैयार रहेगा. इतना ही नहीं, दसवें वित्त आयोग से मिली राशि में से आठ करोड़ रुपये बोधगया, रामशिला, प्रेतशिला, ब्रह्मा योनी आदि प्रमुख तालाबों की सफाई के साथ-साथ पिंडदान शेड आदि के निर्माण के लिए दी गई है. वैसे पिंडदान गया के अलावा कई दूसरी जगहों पर किया जाता है. लेकिन पंडित प्रमोद झा का कहना है कि गया में पिंडदान करने का विशेष महत्व है. बहरहाल, गया (बिहार) के अलावा जिन जगहों पर पिंडदान होता है, वे हैं- हरिद्वार (उत्तराखंड), कुरुक्षेत्र (हरियाणा) और पुष्कर (राजस्थान). लेकिन इनमें सबसे ज़्यादा महत्व गया में पिंडदान करने का ही है. पंडित झा ने बताया कि गया का महत्व इसलिए भी सबसे अधिक है, क्योंकि यहां भगवान राम तक ने पिंडदान किया था.

वैसे यह सवाल तो उठता ही है कि जो विदेश में रह रहे हैं और किसी कारणवश गया नहीं आ सकते हैं, वह अपने पूर्वजों को मोक्ष दिलाने के लिए क्या करें? ऐसे में ऑनलाइन पिंडदान उनके लिए तो सही हो सकता है, क्योंकि इससे उन्हें यह संतुष्टि तो मिल ही जाएगी कि पौराणिक मान्यताओं के अनुसार उनके पूर्वजों को मुक्ति मिल ही जाएगी. लेकिन, स्थानीय लोग और पंडे जिस तरह राज्य सरकार के फ़ैसले का विरोध कर रहे हैं, वह इस योजना की सफलता पर संदेह पैदा करता है. हालांकि सरकार का यह कहना सही है कि इसे अनिवार्य नहीं किया गया है. जो आकर पिंडदान करना चाहते हैं, उन्हें रोका नहीं जाएगा. यह उनके लिए है, जो ख़ुद नहीं आ सकते.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

राजनेता दादी मां से कुछ सीखें

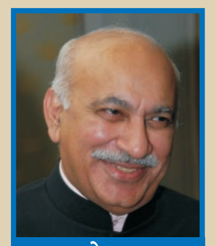
एम जे अकबर

अगर आप यह देखना चाहते हैं कि भारत किधर जा रहा है तो ज़रा एक नज़र हमारी दादीअम्माओं पर डालिए. बोरियत से भरे एक दिन मेरे रिमोट ने संयोगवश मुझे एक टीवी कार्यक्रम से रू-ब-रू करा दिया. यह कार्यक्रम उन नक़ल किए गए डांस कार्यक्रमों में से एक था, जो प्रतिभा के नाम पर लाखों को टीवी से चिपकाए रखते हैं. हालांकि मेरी प्रतिक्रिया ज़्यादा देर तक टिकने की नहीं थी, लेकिन एक झलक से ही एक नए उभरते दौर की रूपरेखा साफ नज़र आ गई. अर्धकिशोर, कच्ची उमर के और बचपन और किशोरावस्था के बीच की आक्रामक उम्र वाले अधपके प्रतिभागी इस कदर कामुकता के साथ नाच रहे थे कि बॉलीवुड के नृत्य-निर्देशकों को भी शरमा दें.

> **पूरे भारत में—चाहे सार्वजनिक और निजी मनोरंजन हो—कैंपसों की बदलती जीवनशैली हो—ख़ाली समय का फैलाव हो— हर जगह, हमारे मूल्यों में एक सामाजिक क्रांति दिखाई दे रही है. राजनीति अर्थशास्त्र था और है. यह मूल है, लेकिन राजनीति एक सांस्कृतिक तथ्य भी है. संस्कृति, परंपरागत और सम्मानजनक अर्थों में धर्म या यूं कहें धार्मिकता और उसके साथ आने वाले नैतिक मूल्यों से प्रभावित रही है.**

हालांकि असल कहानी यह भी नहीं थी. हम सब जानते हैं कि प्रसिद्धि ही नई नैतिकता है और बहुत से युवा लोग ग्लैमर की चकाचौंध से भरी दुनिया के कैमरे की जद में आने के लिए सब कुछ कर सकते हैं. आसक्तिवादियों के लिए असंख्य घरों में विस्मय से फैली आंखें मौन का नहीं, उत्सव का कारण हैं.

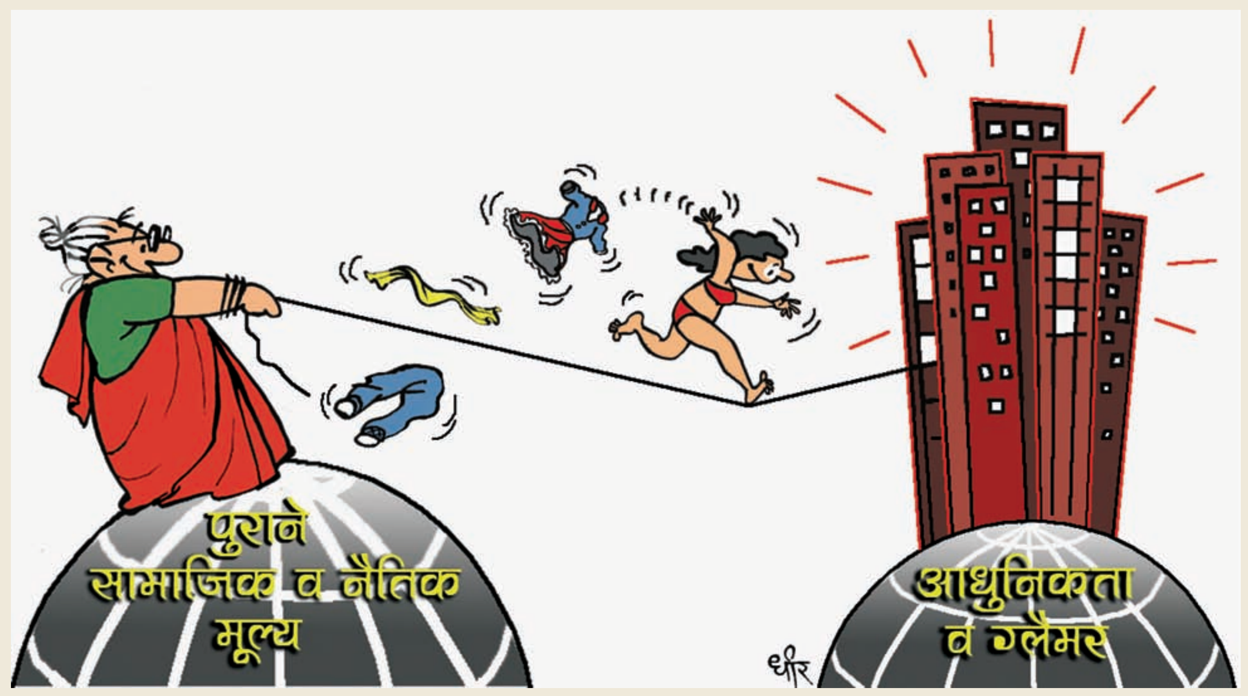

कहानी में इस टीवी कार्यक्रम के लिए पहली पंक्ति में बैठा एक परिवार है, जिसकी चमकती मांएं और मदहोश दादी-नानियां हर कामुक अंदाज़ पर पूरे ज़ोर से हौसला अफ़जाई कर रही थीं. यह मदहोशी किसी शराब या अलकोहल जैसी चीज़ की नहीं बल्कि प्रसिद्धि और उससे मिलने वाले धन की उम्मीद की थी. ये औरतें कोई महानगरीय-आज़ाद औरतें नहीं थीं. ये छोटे शहरों की थीं, जिन्होंने अपने बच्चों को मुंबई की ग्लैमर दुनिया में चमकाने के लिए जनता को रिझाने का पाठ पढ़ाया है. ये औरतें 1980 में पैदा नहीं हुई थीं, इनमें से अधिकतर चालीस के पार की थीं. इनके माता-पिता सिनेमाघरों में दो फूलों के आपस में मिलने से झेंप जाते होंगे. इन्होंने इस झेंपू मानसिकता और इसके कर्तव्यपूर्ण सेक्स के सिद्धांत को उभरते बहुराष्ट्रीय विश्व के भौतिक और ऐंद्रिय सुखों के लिए त्याग दिया है. इन बुढ़ाते लोगों पर हंसिए मत, ये मज़े में हैं.

पूरे भारत में-चाहे सार्वजनिक और निजी मनोरंजन हो-कैंपसों की बदलती जीवनशैली हो-ख़ाली समय का फैलाव हो- हर जगह, हमारे मूल्यों में एक सामाजिक क्रांति दिखाई दे रही है. राजनीति अर्थशास्त्र था और है. यह मूल है, लेकिन राजनीति एक सांस्कृतिक तथ्य भी है.

संस्कृति, परंपरागत और सम्मानजनक अर्थों में धर्म या यूं कहें धार्मिकता और उसके साथ आने वाले नैतिक मूल्यों से प्रभावित रही है. पहचान के ऊपर धर्म की पकड़ ढीली हुई है, ख़ासकर हिंदू जनसंख्या के बहुसंख्यक वर्गों में.

धर्म, अभी भी अल्पसंख्यकों के लिए अस्तित्व की महत्वपूर्ण शक्ति है क्योंकि यही अंतरों को परिभाषित करता है. इसीलिए दुपट्टे और यहां तक की बुर्के की लोकप्रियता युवा मुस्लिम लड़कियों में बढ़ रही है, वहीं हिंदू युवतियां पाश्चात्य और भारतीय फैशन के मेल का उत्सव मना रही हैं.

एक आंतरिक तर्क है, भले आप इसे पूरी तरह से उचित न मानें कि आज भी मस्जिद, गुरुद्वारे या गिरजाघर अल्पसंख्यकों की राजनीति में, बहुसंख्यक सोच में मंदिरों की तुलना में कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं. यही वजह है कि भाजपा का बाबरी मस्जिद की जगह मंदिर बनाने का वादा अब किसी युद्धघोष के बजाय उबासी पैदा करता है. जवाहरलाल नेहरू ने एक बार बांधों और इस्पात मिलों को नए भारत का मंदिर कहा था. वर्तमान भारत के मंदिर मॉल, टीवी स्टूडियोज, डांस हॉल्स और स्टॉक एक्सचेंज हैं. यह नई संस्कृति एक नई राजनीति की ओर बढ़ रही है, भले ही यह स्थापित मूल्यों की सहनशीलता भी परख रही है. इसका मतलब यह नहीं कि व्यवस्था ख़त्म हो चुकी है. आप ख़ुद को बचाने की इसकी प्रतिक्रिया को समलैंगिकता के मुद्दे पर इसके विरोध में देख सकते हैं.

एक राजनीतिक दल को बेशक अपना क्षेत्र किसी विशेष मतदाता वर्ग से आगे बढ़ाना चाहिए, लेकिन ऐसे दल जो अपने अतीत में इस तह फंसे रह जाते हैं कि वे नए बदलते सामाजिक जीवन को न समझ सकें, उनको चुनावों में भारी क़ीमत चुकानी पड़ती है. इस बदलाव से निपटने का व्यवहारिक तरीक़ा उपयोगितावाद है. भाजपा और वामदल चुनाव के बाद विचाराधारा की समस्या से उलझे हुए हैं इसकी वजह महज़ इतनी है कि उनके पास विचारधारा है. विचाराधारा जब अपने पैदाइशी बंधनों में बंधी रही तो कमज़ोर हो जाती है. लचीलापन, विचारधारा को मानने वालों के लिए एक कठिन काम है.

कांग्रेस को दिक़्क़त नहीं है, क्योंकि उसने 1991 में ही विचारधारा के बदले उपयोगितावाद को अपना लिया था. वह अपने सांस्कृतिक और आर्थिक नज़रिए को परिस्थितियों के हिसाब से और कभी-कभी तो एक साथ भी पलट सकती है. वह दिल्ली उच्च न्यायालय की धारा 377 पर दिए फ़ैसले पर उदार चेहरा भी दिखा सकती है और साथ में गिरजाघरों से वह इस उदारता की हद पर बातचीत भी कर सकती है. यही उपयोगितावाद उसे उसके बजटों में एक से दूसरी समस्या पर जाने की जगह देता है. प्रणव मुखर्जी बिना हिचकिचाए शहरी से ग्रामीण की ओर गियर बदल सकते हैं, क्योंकि पार्टी की प्रार्थना-पुस्तिका में कोई नियम नहीं दिए गए हैं.

मैथ्यू आरनॉल्ड का नाम अंग्रेजी साहित्य के विद्यार्थियों को भी शायद याद न हो. विक्टोरियन कवियों की लंबी फ़ेरहिस्त में भी वह ऊपरी दर्ज़े में नहीं थे. उनकी 1855 में लिखी कविता *स्टैंजाज ऑफ ग्रैंडे चार्टेश्यूज* शायद और कम लोगों को याद हो. लेकिन कभी-कभी भूले-बिसरे कवि भी न भूलने वाली पंक्तियां छोड़ जाते हैं. यह दो पंक्तियां आज 2009 में पूरी सटीक उतरती हैं-

दो दुनियाओं के बीच भटकता हूं मैं,
एक हो चुकी है मृत और दूसरी में तो पैदा होने की ताक़त ही नहीं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

जनप्रतिनिधियों से अलग हैं जज

रवि किशोर

हाल के दिनों में इस बात पर काफी बहस हुई है कि क्या उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय के जजों को सूचना के अधिकार (आरटीआई) के तहत अपनी संपत्ति का ब्योरा देना चाहिए और यह ब्योरा सार्वजनिक होना चाहिए या नहीं? सांसदों, न्यायाधीशों और आरटीआइ कार्यकर्ताओं के बीच इस मामले में राय बंटी हुई है. कुछ वरिष्ठ वकील और सेवानिवृत जज इसमें कोई बुराई नहीं देखते हैं. सांसदों और आरटीआइ कार्यकर्ताओं का भी यही मानना है. लेकिन दूसरी ओर मुख्य न्यायाधीश के जी बालकृष्णन हैं, जिनका विचार है कि सर्वोच्च न्यायालय के जजों की संपत्ति का ब्योरा सार्वजनिक नहीं होना चाहिए.

माननीय मुख्य न्यायाधीश के जी बालकृष्णन ने यह साफ कहा है कि जज अपनी संपत्ति का ब्योरा देने के लिए बाध्य नहीं हैं. उनका कहना है कि ऐसा कोई नियम या क़ानून नहीं है जिसमें कहा गया हो कि सर्वोच्च न्यायालय के जजों को अपनी संपत्ति का ब्योरा देना ही होगा. तब भी जज अपनी संपत्ति का ब्योरा मुख्य न्यायाधीश के पास जमा करते हैं. हालांकि अभी हाल में उनके नज़रिए में थोड़ा बदलाव आया है.

अपनी संपत्ति का ब्योरा देने से लगातार इंकार करने के बाद अब लगता है कि सर्वोच्च और उच्च न्यायालय के जज जनता के दबाव के आगे झुक गए हैं. मुख्य न्यायाधीश ने कहा है कि वह केंद्र के उस विधेयक को मानेंगे जिसके तहत जजों द्वारा संपत्ति की घोषणा को अनिवार्य कर दिया गया है. उन्होंने कहा कि क़ानून मंत्री ने उन्हें इस तरह का विधेयक लाने के प्रस्ताव की जानकारी दी है. जजों को इसमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि वे अपनी संपत्ति का ब्योरा पहले से ही मुख्य न्यायाधीश को देते रहे हैं और साथ ही आयकर भी चुकाते हैं. मुख्य न्यायाधीश ने यह भी कहा कि उन्होंने क़ानून मंत्री को यह कहा कि जज राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों से अलग स्तर पर हैं और उन्हें दुर्भावना से पीड़ित याचिकाओं और प्रताड़ना से सुरक्षित रखने की ज़रूरत है. मंत्री जी ने जजों की समस्या को समझा है. कुछ ही दिन पहले क़ानून मंत्री वीरप्पा मोइली ने भी ऐसे ही राय रखते हुए कहा था कि न्यायाधीशों को संपत्ति के ब्योरे के बारे में राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के बराबर नहीं रखा जा सकता. उनका मानना है कि विधेयक में कुछ प्रावधान होने चाहिए जिससे जजों को ऐसी ओछी और आधारहीन याचिकाओं से बचाया जा सके.

दरअसल, इस पूरे विवाद की शुरुआत केंद्रीय सूचना आयोग के 6 जनवरी 2009 के एस सी अग्रवाल की अपील पर दिए फ़ैसले से हुई. एस सी अग्रवाल ने आरटीआइ के तहत 10 नवंबर 2007 को एक आवेदन दायर करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के सीपीआईओ से सर्वोच्च न्यायालय के जजों द्वारा 7 मई 2007 को पारित उस प्रस्ताव की एक कॉपी मांगी थी जिसके तहत कहा गया था कि हर जज को अपनी और अपने आश्रितों की रीयल एस्टेट या निवेश से जुड़ी संपत्ति का ब्योरा जमा करना होगा. आवेदन में यह भी मांग की गई थी कि सीपीआईओ उन्हें जजों के द्वारा दायर ऐसे किसी भी ब्योरे की जानकारी दें. इस आवेदन में उच्च न्यायालय के जजों द्वारा दी गई ऐसी कोई जानकारी भी मांगी गई थी. सीपीआईओ ने उस प्रस्ताव की कॉपी तो अपीलकर्ता को दे दी लेकिन संपत्ति के ब्योरे से जुड़ी बाक़ी जानकारी देने से मना कर दिया. इस इंकार का आधार यह बताया गया कि मांगी गई जानकारी सर्वोच्च न्यायालय की रजिस्ट्री के नियंत्रण में नहीं है. इस पर एस सी अग्रवाल ने केंद्रीय सूचना आयोग में अपील की.

केंद्रीय सूचना आयोग ने इस अपील में दोनों पक्षों को सुनने के बाद कहा कि सूचना के अधिकार (2005) का उद्देश्य हर सार्वजनिक संस्था में पारदर्शिता स्थापित करना है. आरटीआइ के तहत नागरिकों को सार्वजनिक संस्थाओं के बारे में जानकारी पाने का अधिकार है, बशर्ते वह जानकारी इस क़ानून की जद में आती हो.

केंद्रीय सूचना आयोग(सीआईसी) ने कहा कि सार्वजनिक संस्था इस क़ानून के भाग 2(एच) में पारिभाषित है जिसका मतलब ऐसी संस्था से है, जो सरकार के द्वारा स्थापित या संविधान के द्वारा या उसके अंतर्गत स्थापित की गई हो. संविधान का अनुच्छेद 124 सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना और संगठन से संबंधित है. इस तरह सर्वोच्च न्यायालय संविधान के द्वारा स्थापित संस्था है और सार्वजनिक संस्था के दायरे में आती है.

सीआईसी ने आगे कहा कि जो बातें उसके सामने हैं, उनके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जजों की संपत्ति से जुड़ी जानकारी मुख्य न्यायाधीश के पास जमा कराई गई है और मुख्य न्यायाधीश उसके संरक्षक हैं. इस जानकारी को गोपनीय तरीक़े से रखा जाता है और हर मुख्य न्यायाधीश के सामने रखा जाता है. इसलिए इस जानकारी को मुख्य न्यायाधीश की व्यक्तिगत जानकारी नहीं कहा जा सकता. जो एकमात्र बात स्पष्ट नहीं है, वह यह है कि क्या सर्वोच्च न्यायालय और मुख्य न्यायाधीश अलग-अलग संस्थाएं हैं या एक ही संस्था? सीआईसी ने कहा कि किसी संस्था का प्रमुख और वह संस्था अलग संस्थाए नहीं हो सकतीं. इस तरह मुख्य न्यायाधीश के पास जो जानकारी हो, वह सर्वोच्च न्यायालय के लिए भी उपलब्ध होनी चाहिए. साथ ही सर्वोच्च न्यायालय का रजिस्ट्रार उसी का हिस्सा है और उसे अलग संस्था का दर्जा नहीं दिया जा सकता.

संपत्ति वाले मामले को इस संदर्भ में देखें तो साफ है कि यह सूचना सर्वोच्च न्यायालय के पास है और सीपीआईओ एक सार्वजनिक संस्था के तौर पर सर्वोच्च न्यायालय का प्रतिनिधि है. इस तरह आरटीआई क़ानून के तहत वह ऐसी सूचना नागरिकों को देने को बाध्य है जो क़ानून की जद में आती हो. सुनवाई के दौरान यह तर्क दिया गया था कि संपत्ति का ब्योरा गोपनीय है और इसे विश्वास के आधार पर मुख्य न्यायाधीश को दिया गया है. इस तरह यह जानकारी आरटीआइ एक्ट के भाग 8(1)(ई) के तहत इस क़ानून के दायरे से बाहर है.

अंततः सीआईसी ने कहा कि अपीलकर्ता एस सी अग्रवाल ऐसे ब्योरों की कॉपी या जजों के नाम नहीं मांग रहे, न ही वह किसी दायर ब्योरे की जांच की मांग कर रहे थे. वह सिर्फ़ यह जानकारी मांग रहे थे कि क्या किसी जज ने ऐसा ब्योरा जमा किया है. इस तरह सभी संदर्भों को ध्यान में रख कर सीआईसी ने सीपीआईओ को अपीलकर्ता को दस दिनों के अंदर यह जानकारी देने का निर्देश दिया.

सीआईसी के फ़ैसले के ख़िलाफ़ सर्वोच्च न्यायालय की रजिस्ट्री ने दिल्ली उच्च न्यायालय का रुख़ किया जिसने इस निर्देश पर स्थगन आदेश दे दिया. स्थगन आदेश देते हुए उच्च न्यायालय ने कहा कि जजों को सांसदों, विधायकों या दूसरे जनप्रतिनिधियों की तरह नहीं देखना चाहिए, क्योंकि ऐसी जानकारी का दुरुपयोग उनके ख़िलाफ़ किया जा सकता है. जस्टिस एस रवींद्र भट ने कहा कि न्यायपालिका के संदर्भ में जनहित का मतलब दूसरी संस्थाओं से अलग है. जजों को दूसरे जनप्रतिनिधियों से अलग तरीक़े से देखना चाहिए. न्यायपालिका हर तरह के भय से सुरक्षित होनी चाहिए और आरटीआई के तहत ख़ुलासे से जजों की व्यक्तिगत जानकारियों का दुरुपयोग हो सकता है. चुनाव आयोग और ऐसी संस्थाएं इसीलिए कारगर हैं, क्योंकि वह बिना भय के काम करती हैं. मामला अभी भी न्यायालय में विचाराधीन है.

इस बीच क़ानून मंत्रालय एक विधेयक लाने की तैयारी कर रहा है और क़ानून मंत्री कह रहे हैं कि न्यायाधीश को भी सरकारी नौकरों की तरह ज़िम्मेदार होने चाहिए और जजों के लिए एकाउंटेबिलिटी बिल बेहद ज़रूरी है. इस तरह यह सवाल दरअसल संपत्ति के ब्योरे का नहीं, जजों की ज़वाबदेही का है. सौभाग्यवश हमारे पास एक ऐसी न्याय-व्यवस्था है जिसका रिकार्ड इक्के-दुक्के मामलों को छोड़कर बेहतरीन रहा है. हालांकि मुख्य न्यायाधीश भी कह चुके हैं कि व्यवस्था में और सुधार की ज़रूरत है. आज इस बात की ज़रूरत है कि इसमें और पारदर्शिता और ज़िम्मेदारी लाई जाए ताकि जनता का न्यायापालिका पर भरोसा बना रहे और न्याय मांगने वालों के मन में शक़ की थोड़ी भी गुंजाइश न रहे. इस तरह की व्यवस्था का माननीय मुख्य न्यायाधीश से बेहतर संरक्षक कौन हो सकता है. ज़रूरत इस बात की है कि मुख्य न्यायाधीश यह कहें कि उच्च और उच्चतम न्यायालयों के सभी जज अपनी संपत्ति का ब्योरा दे रहे हैं और यह जानकारी उनके संरक्षण में हैं. फिर भी अगर जनता को यह लगता है कि पद की गरिमा और परंपरा को बनाए रखने के लिए इस ब्योरे को सार्वजनिक करना ज़रूरी है तो मुख्य न्यायाधीश को इस पर विचार कर फ़ैसला लेना चाहिए. अगर उन्हें लगता है कि जानकारी सार्वजनिक करने से जजों पर दबाव बढ़ेगा और वे प्रताड़ना के शिकार हो सकते हैं, तो मुख्य न्यायाधीश को ऐसे उपाय करने होंगे जिससे जजों की गरिमा की सुरक्षा हो सके और उन्हें किसी तरह की ओछी प्रताड़ना से बचाया जा सके, लेकिन यह पारदर्शिता और जवाबदेही की क़ीमत पर नहीं होना चाहिए.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

आदरणीय संपादक जी,
नए तेवर वाला नया अंक (19 जुलाई) शानदार रहा. गे मामले में ***चौथी दुनिया*** का विचार अलग और बढ़िया लगा. सच्चाई की सारी परतें खोल दीं. समाज के अधिकतर लोग समलैंगिकता को सामाजिक मान्यता नहीं देते. अब देखना यह है कि सर्वोच्च न्यायालय इस क़ानून को लेकर क्या निर्णय लेता है. *बजट दुनिया* तो गागर में सागर जैसी रही. रेल और आम बजट के बारे में आपने थोड़ी जगह में ही विस्तार से जानकारी दे दी. आपके अख़बार में सबसे रोचक ख़बर रही कानपुर में लड़कियों का भी जनेऊ होना. यह समाज में एक नई शुरुआत है, जो रूढ़िवादी परंपरा को तोड़ती है. *बाक़ी दुनिया* से विदेशी रणनीतियों के बारे में काफी जानकारी हासिल हुई. *करियर दुनिया* का तो जवाब ही नहीं है. इससे युवा वर्गों को काफी मदद मिलेगी. फिल्म और खेल पन्ने प्रशंसनीय हैं. खेल की ख़बर और विस्तारपूर्वक हो. आपका प्रयास बहुत सराहनीय है.

आपकी
श्रद्धा
दिल्ली

प्रिय संपादकजी,
मैं एक आम पाठक हूं. पिछली बार यात्रा के दौरान आपका अख़बार देखने को मिला, जिसे पढ़ने के बाद चिट्ठी लिखने को मजबूर हो गई. पहली बात तो यह कि आपने बहुत सुंदर और शानदार अख़बार निकाला है. ख़बरों की प्रस्तुति और रंग-बिरंगे पन्ने बहुत आकर्षित करते हैं. अन्य अख़बारों से बिल्कुल भिन्न है ***चौथी दुनिया***. दूसरी बात यह कि विभिन्न विषयों पर सभी आलेख और टिप्पणियां बहुत धारदार और न्यायपूर्ण हैं. उम्मीद है कि आगे भी इसी तरह बढ़ते रहेंगे और सफलता की ऊंचाइयां छूते रहेंगे.

आपकी
सारिका जैन
मेट्रो इंडिया प्राइवेट लिमिटेट कंपनी
कड़कड़ी मोड़, प्रीत विहार, दिल्ली-92

जब तोप मुक़ाबिल हो

भारी पड़ेगा समलैंगिकता का विरोध न करना

> **ऐसा लगता है कि न सरकार, न संसद और न न्यायपालिका को इस देश की समस्याओं की चिंता है. क्या पचासी प्रतिशत जनता को जीने का हक़, पढ़ने का हक़, नौकरी का हक़, पीने के पानी का हक़, बिजली-सड़क-अस्पताल का हक़, अल्पसंख्यकों का हक़, कमज़ोर वर्गों का हक़ मिल गया है?**

तीन सौ सतहत्तर धारा को हटाने का खेल ख़ामोश होकर भी देखा जा सकता है. बहुत से लोग देख भी रहे हैं, क्योंकि लगता है उन्हें इस बात का अहसास नहीं है कि इस धारा के हटने का मतलब क्या होगा. लोगों को अहसास भले न हो, क्योंकि उनके सामने सच्चाई आते-आते आएगी. लेकिन राजनैतिक दल ख़ामोश क्यों हैं? एक भी दल ने इस धारा को हटाने के ख़िलाफ़ अभी तक एक शब्द भी नहीं कहा है. राजनैतिक दलों की ख़ामोशी बताती है कि वे इस खेल के ख़ामोश खिलाड़ी हैं. सरकार की ओर से क़ानून मंत्री वीरप्पा मोहली ने सबसे पहले कहा कि वह भी इस क़ानून को हटाने का बिल ला सकते हैं. देश के गृह सचिव साफ कह रहे हैं कि हो सकता है सरकार सुप्रीम कोर्ट में न जाए, और दिल्ली हाईकोर्ट के फ़ैसले के आधार पर ही कार्रवाई करे.

लेकिन खेल है क्या और कौन लोग इस खेल को खेल रहे हैं? धारा तीन सौ सतहत्तर के हटने का मतलब होगा कि देश में समलैंगिक वेश्यावृत्ति खुलेआम शुरू हो जाएगी. यही क़ानून बाल वेश्यावृत्ति को भी रोकता है, लेकिन इसके हटने के साथ यह भी शुरू हो जाएगी. मज़े की बात है कि पुरुष का पुरुष से सेक्स (एमएसएम) एड्स फैलने का महत्वपूर्ण कारण माना गया है और इसे हाई रिस्क कहा गया है. इसे हाई रिस्क क्यों कहा गया इसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, न ही इस बात का पक्का सबूत है कि एमएसएम के तहत आने वाला वर्ग एड्स फैला रहा है.

लेकिन इस धारा के ख़िलाफ़ हाई कोर्ट के फ़ैसले और भारत के क़ानून मंत्री की टिप्पणी ने ऐसा माहौल बना दिया मानो लगता है कि बस यही एक समस्या थी, जिसका हल तलाश लिया गया है. चंद लाख लोग और हमारा सर्वशक्तिमान मीडिया इसे आज़ादी आने जैसा मान रहे हैं. ताज्जुब तो यह कि हाईकोर्ट में तर्क देने वालों ने हाई कोर्ट को ही गुमराह करने की कोशिश की. अगर इस धारा के कारण एमएसएम में भरोसा रखने वाले लोग सामने नहीं आते और चोरी छिपे मिलकर एड्स फैला रहे हैं, तो अब जब क़ानून हटने की बात हुई है तब खुलेआम प्राइवेट में संपर्क बना ऐसे लोग एड्स को आठ से दस गुना फैलाएंगे. हाईकोर्ट का यह फ़ैसला एड्स को बढ़ावा देगा, उसे रोकने या कम करने में मददगार नहीं बनेगा.

रहस्य इस बात का है कि जिस तीन सौ सतहत्तर धारा का इस्तेमाल ही नहीं हुआ और अब तक इसमें केवल एक सज़ा हुई, वह भी आज़ादी से पहले, तो उस क़ानून को हटाने के लिए इतनी ताक़तें क्यों इकट्ठा हो रही हैं? इस क़ानून को हटाने की जल्दबाज़ी ही संदेह पैदा कर रही है और जब जल्दबाज़ी की दौड़ में सरकार भी दिखाई दे, तो संदेह और गहरा हो जाता है.

ऐसा लगता है कि न सरकार, न संसद और न न्यायपालिका को इस देश की समस्याओं की चिंता है. क्या पच्चासी प्रतिशत जनता को जीने का हक़, पढ़ने का हक़, नौकरी का हक़, पीने के पानी का हक़, बिजली-सड़क-अस्पताल का हक़, अल्पसंख्यकों का हक़, कमज़ोर वर्गों का हक़ मिल गया है? इन वर्गों की आबादी सौ करोड़ के आस-पास होगी और इसे साफ कहना चाहिए कि इन्हें एक भी हक़ नहीं मिला है. ऐसा क्यों हो रहा है कि सौ करोड़ के हक़ से ज़्यादा चिंता कुछ लाख के हक़ की हो रही है, और सारी व्यवस्था इन कुछ लाख लोगों को उनका मनपसंद जीवन देना चाहती है ?

दरअसल कहानी कुछ और है. हमें कहने में कोई हिचक नहीं कि तीन खरब के टर्नओवर को कंट्रोल करने वाला विदेशी माफ़िया इसके पीछे है. अब जब कि इस क़ानून को हटाने का इशारा भारत सरकार ने दिया है तो वे सब बहुत ख़ुश हैं जो देश में सेक्स इंडस्ट्री के आने का रास्ता तलाश रहे हैं. 50 अरब के टर्नओवर वाली संभावित सेक्स इंडस्ट्री में पैसा लगाने के लिए देसी-विदेशी निवेशक तैयार हैं. सेक्स के जितने विकृत रूप हो सकते हैं, अब उन सबका बाज़ार हिंदुस्तान बन जाएगा. कम से कम अभी तो ऐसा ही लगता है.

इस कहानी के पात्रों में अख़बार, टेलीविजन, संसद और न्याय व्यवस्था के लोग शामिल लग रहे हैं. तीन सौ सतहत्तर के हटने पर कुछ न बोलना इन वर्गों का उसे हटाने का समर्थक माना जाना चाहिए. ऐसा तो नहीं माना जा सकता कि इन तबकों को इस का मतलब ही पता न हो. ब्राज़ील, मैक्सिको, फिलीपींस और थाईलैंड में सरकार चलाने वाले, उसका विरोध करने वाले और वहां की न्यायपालिका, माफ़िया से हाथ मिलाकर चलते हैं. हमारे हिंदुस्तान में ऐसा नहीं होगा, यह मानने का कोई कारण नहीं है.

धार्मिक संगठन भी ख़ामोश हैं. अभी राममंदिर और बाबरी मस्जिद का मुद्दा खड़ा हो, तो आपस में लड़ने-मरने के लिए सड़क पर धार्मिक संगठन खड़े हो जाएंगे, पर भारत रूपी मंदिर और हिंदुस्तान रूपी मस्जिद को तबाह करने की साज़िश का विरोध अभी तक हिंदू-मुस्लिम-सिख-ईसाई या किसी और धार्मिक संगठन ने नहीं किया है. कुछ बयान आए, पर क्या यह विषय सिर्फ़ बयान देने का है ?

हम एक और चेतावनी देना चाहते हैं. जब देश में तीन खरब को कंट्रोल करने वाला माफ़िया ऑपरेट करेगा तो उसकी जद में हिंदू भी आएंगे और मुसलमान भी, सिख भी और ईसाई भी. हमारे देश की ग़रीबी को दूर करने के तर्क गढ़े जाएंगे और वे सब एक बड़े देशव्यापी सेक्स मार्केट के पक्ष में खड़े दिखाई देंगे. आज अगर धार्मिक संगठन न चेते और उन्होंने आवाज़ नहीं उठाई तो बहुत कुछ बिखर जाएगा. राजनेता आसानी से ख़रीदे जा सकते हैं, पर अपने को भगवान, अल्लाह, वाहे गुरु और गॉड के साए में रखने वाले अगर बिक गए तो इस मुल्क का क्या होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती.

हम देश की न्यायपालिका और संसद से कहना चाहते हैं कि वे इस देश को सेक्स इंडस्ट्री का गुलाम होने से बचा लें. हमारी न्याय व्यवस्था और संसदीय व्यवस्था चाहे तो माफ़िया को मुंहतोड़ जवाब दे सकती है. अगर अभी जवाब न दिया गया तो बाद में जवाब देने की ताक़त ही नहीं बचेगी.

अगर डर सच साबित हुआ तो अगले पांच सालों से हमें दिखाई देगा कि हमारी संसद और न्याय व्यवस्था इस माफ़िया के रहमोकरम पर है. जिस दिन दिल्ली हाईकोर्ट ने तीन सौ सतहत्तर पर फ़ैसला सुनाया, उसी दिन केंद्र सरकार ने आठ से चौदह साल के बच्चों को मुफ़्त शिक्षा देने का फ़ैसला लिया. शर्मिंदगी के साथ कहना पड़ता है कि टीवी और अख़बार इस फ़ैसले को तो तरह-तरह से दिखाने में लगे थे, पर किसी ने भी आठ साल से चौदह साल के बच्चों की मुफ़्त शिक्षा की जानकारी देश को नहीं दी.

कौन बोलेगा? अगर न्यायपालिका और संसद कुछ न करें, तो क्या इस देश का आम आदमी, चाहे वह मुसलमान हो या हिंदू, सिख हो या ईसाई ख़ामोश रह जाएगा और सब कुछ होने देगा? इसी सवाल का जवाब तलाशना है. हमें विश्वास है कि जवाब मिलेगा और ज़रूर मिलेगा.

संपादक
editor.chauthiduniya@gmail.com

पानी के संकट से मिलकर निपटे भारत-पाक

पिछले साल पाकिस्तान को धान उत्पादन में पांच अरब रुपये से भी अधिक की क्षति हुई. वह भी पानी की कमी के कारण, कमी तब से है, जब से भारत ने बगलिहार डैम के चलते चिनबा नदी के पानी को रोक दिया है (सितंबर से). भारत ने इंडस वाटर ट्रीटी (सिंधु जल समझौता) का उल्लंघन किया है और इसके पीछे भारत की मंशा यह है कि पाकिस्तान को पानी के लिए मोहताज कर दे. भारतीय विचारक रिवर डाइवरशन की योजना पर इस विचार से काम कर रहे हैं कि पाकिस्तान में पानी की समस्या उत्पन्न हो जाए. जिसके चलते गेहूं और अन्य फ़सलों की पैदावार में कमी आएगी और पानी के बंटवारे को लेकर पाकिस्तान में प्रांतीय लड़ाई शुरू हो जाएगी. कई वर्षो से सिंध पानी की कमी की शिकायत कर रहा है और पंजाब पर किसानों के हिस्से का पानी ख़र्च करने का आरोप लगा रहा है. अब बलूचिस्तान के नेताओं ने सिंध पर आरोप लगाया है कि वह उसके हिस्से का पानी छीन रहा है. हाल में, पंजाब के मुत्ताहिद किसान मुहाज़ ने अपने खेतों में खड़ी फ़सल के लिए हो रही पानी की कमी के विरोध में धरना प्रदर्शन कर विरोध जताया था.

और, पंजाब असेंबली में कहा गया कि पंजाब अपने हिस्से का पानी सिंध प्रांत को नहीं देगा. पाकिस्तान पहले से ही आंतरिक और सीमा सुरक्षा पर ख़तरों से जूझ रहा है, और विश्व आर्थिक मंदी के चलते आर्थिक संकट का सामना कर रहा है, पाकिस्तान में ख़तरे की नई घंटी सुनाई दे रही है. पाकिस्तान के प्रांतों के बीच जल विवाद पनपने की संभावना पैदा हो गई है.

2004 में भारत के स्ट्रैटेजिक फोरसाइट ग्रुप ने पाकिस्तान के प्रांतों पर जब पाकिस्तान प्रोविंसेस छापी थी, उस वक़्त भारत और पाकिस्तान के बीच कंपोजिट डायलॉग की शुरुआत की जा चुकी थी. किताब की प्रस्तावना में संदीप वासलेकर ने लिखा है कि जिस तरह से किताब में पाकिस्तान के बारे में न लिख पाकिस्तान के प्रांतों की चर्चा की गई है, उससे यह ज़ाहिर है कि यह किताब बहुत महत्वपूर्ण है और इसे रॉ जैसा संस्थान ही अंजाम दे सकता है. संदीप, जो इस ग्रुप के प्रेसिडेंट हैं, लिखते हैं कि 2004 में राजनीतिक हल्कों में 1971 की स्थिति की चर्चा की जा रही थी. इसका यह मतलब नहीं कि 2004 और 2005 में प्रांत पाकिस्तान से अलग हो जाते, लेकिन क्या 2010 में यह प्रांत एकजुट होंगे. इसके ज़रिए एक सवाल पूछा गया कि और वह सवाल ख़ुद ही किताब लिखे जाने के मकसद को साफ कर रहा है. इससे पहले दो देशों के बीच जंग धर्म, क्षेत्र पर क़ब्ज़ा और प्राकृतिक संसाधनों जिसमें तेल भी शामिल है, पर पकड़ बनाने के लिए होती थी. लेकिन अफ़्रीका, मध्य एशिया, एशिया में पानी की कमी को देखते हुए कहा जा सकता है कि भविष्य में होने वाली जंग पानी के लिए लड़ी जा सकती है. सिंधु नदी पर पाकिस्तान और भारत के बीच चालीस साल से विवाद चल रहा है. 1800 मील तक फैली सिंधु नदी और उसकी शाखाएं एक साथ मिलकर दुनियाभर की सबसे बड़ी कैनाल सिंचाई व्यवस्था है. इस नदी पर हाईड्रोपॉवर और सिंचाई के लिए बने डैम और कैनाल लगभग सूख चुके हैं. सिंधु नदी को बांटने से दक्षिण एशियाई देशों में तनाव बढ़ा और साथ ही साथ उनके प्रांतों में भी आपसी तनाव पैदा हो गया है. अपने हिस्से से अधिक पानी निकालने की शिकायतों के चलते पाकिस्तान के तटीय इलाक़ों तक पहुंचने वाले पानी में काफी कमी आ गई है. भारत और बांग्लादेश के बीच भी इसी तरह से गंगा के पानी के बंटवारे को लेकर अधिक पानी निकालने की समस्या सामने आ रही है.पिछले कई सालों से सिंध प्रांत पंजाब पर अधिक पानी निकालने और उसके हिस्से के पानी को ख़र्च करने की शिकायत दर्ज़ कराता रहा है.

> **हमारी समस्या यह है कि हम अपने आज के लिए ज़्यादा सोचते हैं और अपनी आनेवाली पीढ़ियों की परवाह नहीं करते. यह हमारी पिछली सरकारों का सबसे संगीन अपराध रहा कि उसने भविष्य की ज़रूरतों के लिए मांग्ला और तरबेला के बाद किसी डैम का निर्माण नहीं कराया.**

आज, बलूचिस्तान का नेतृत्व सिंध पर आरोप लगा रहा है कि वो उसके हिस्से का पानी निकाल रहा है. जबकि भारत पानी की इस कमी के लिए ज़िम्मेदार है, हमारे नेता इस बात को नहीं समझ पा रहे हैं और उन्होंने पिछले तीस सालों में एक भी डैम सिंधु नदी पर नहीं बनाया. दूरदर्शी और उन्नत देश अपनी नीतियों को पचास साल आगे की सोच कर बनाते है ताकि उसकी नीतियां भविष्य के लिए कारगर हों. वे पानी की एक-एक बूंद को बचाने की कोशिश अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए करते हैं. हमारी समस्या यह है कि हम अपने आज के लिए ज़्यादा सोचते हैं और अपनी आनेवाली पीढ़ियों की परवाह नहीं करते. यह हमारी पिछली सरकारों का सबसे संगीन अपराध रहा कि उसने भविष्य की ज़रूरतों के लिए मांग्ला और तरबेला के बाद किसी डैम का निर्माण नहीं कराया. आज इन दोनों डैमों की क्षमता पानी में समय के साथ बढ़ते सिल्ट के कारण कम हो रही है. आज यह जानकर और हैरत होगी कि जब हमारे किसानों को अपने खेतों में पानी की कमी के लिए धरना प्रदर्शन करने की नौबत आ गई है और वहीं 40-42 मिलियन एकड़ फीट पानी महज़ इसलिए समुद्र में चला जा रहा है, क्योंकि उसे बचाने के लिए डैम का निर्माण नहीं कराया गया है.

वहीं, दूसरी तरफ़ पानी की कमी के चलते प्रांतों के बीच विवाद और मतभेद पनप रहा है. पाकिस्तान की समस्या एक बात से और भी गहरी रही है कि भारत सिंधु नदी पर एक के बाद एक डैम का निर्माण करा रहा है और भविष्य में पानी की कमी की आशंका से देश को तैयार कर रहा है. वहीं पाकिस्तान में पानी का संकट गहराता जा रहा है. पाकिस्तान एक कृषि प्रधान देश है, जहां कृषि वार्षिक जीडीपी का एक चौथाई हिस्सा है. मुल्क की पचास फ़ीसदी मज़दूरी खेती के रोज़गार से संबंधित है. पाकिस्तान में कृषि में पानी का ख़र्च कुल ख़र्च का 93 फ़ीसदी है. इसलिए पानी पाकिस्तान के लिए सबसे ज़रूरी मुद्दा है. पानी की कमी का मतलब साफ है कि हमारी अगली पीढ़ियों को भुखमरी और सूखे का सामना करना पड़ेगा.

पिछसे सितंबर में भारत और पाकिस्तान के बीच बगलिहार डैम के विवाद के चलते पाकिस्तान को धान की खेती में पांच बिलियन डॉलर से भी ज़्यादा का नुक़सान हो गया. भारत-पाकिस्तान के बीच अगर कंपोज़िट डायलॉग की एकबार फिर से शुरुआत होती है तो पाकिस्तान सरकार को चाहिए कि वह इस बार जल विवाद और सिंधु घाटी विवाद को एक तरफ़ कर क्षेत्र के विकास के लिए बात करे. पाकिस्तान सरकार की कोशिश होनी चाहिए कि भारत की मदद से सिंधु नदी पर साझा डैम और पाकिस्तान के तटीय इलाक़ों तक पानी पहुंचाने के लिए कैनाल का निर्माण करने में भारत की मदद ले. इसके लिए उसे भारत से तकनीकी मदद के साथ-साथ डैम प्रोजेक्ट्स पर भारत से आर्थिक मदद की भी कोशिश करनी चाहिए.

पाकिस्तान के किसान इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि उनकी समस्या पानी की कमी है और अगर उनके खेतों तक ज़रूरत के मुताबिक पानी पहुंचता रहे तो देश की आर्थिक स्थिति को मज़बूत करने का काम वे एक बार फिर से कर सकते हैं. लिहाज़ा यह पाकिस्तान की हुकूमत को सोचना है कि क्या वे 21वीं सदी के पाकिस्तान को तरक़्क़ी के रास्ते पर ले जाने का काम करेंगे या एक बार फिर कभी ख़त्म न होने वाले विवादों का सहारा लेकर मामले को गरमाए रखेंगे.

ए ज़मील, पाकिस्तान से
feedback.chauthiduniya@gmail.com

ख़ुफ़िया एजेंसियों के सीक्रेट

वाटरगेट कांड के ख़ुलासे से बढ़ा एफबीआई का भाव

पावस नीर

ख़ुफ़िया एजेंसियों के संसार में जितना परदे के आगे होता है, उससे ज़्यादा परदे के पीछे चलता है. कई बार परदे के पीछे चल रहे इस खेल में ऐसे मौक़े भी आते हैं, जब सवाल जीत और हार से बड़ा हो जाता है. किसी ख़ुफ़िया एजेंसी के काम के दौरान अक्सर ऐसा वक़्त आता है, जब उसके पास इतिहास बदलने का मौक़ा होता है. एफबीआई के खुलते रहस्यों की इस कड़ी में बात एक ऐसी घटना की जिसने इतिहास को बदल कर रख दिया.

तारीख़-17 जून 1972. अमेरिका में उस समय के विपक्षी दल डेमोक्रेटिक पार्टी के वाटरगेट स्थित मुख्यालय के एक सुरक्षा गार्ड ने जब सभी तालों पर टेप्स लगे देखे तो उसने इस पर बहुत ध्यान नहीं दिया. बस उन्हें हटा दिया. एक घंटे बाद जब उसे फिर से उन तालों पर टेप लगे दिखे तो इस बार उसने इमरजेंसी का नंबर घुमाया. अमेरिकी केंद्रीय जांच एजेंसी -एफबीआई की टीम ने वहां पहुंचकर पांच लोगों को हिरासत में ले लिया. अगले दिन जब यह ख़बर अख़बारों में छपी तो लोगों ने इसे चोरी और सेंधमारी का मामूली मामला समझा.

तब शायद किसी को अंदेशा नहीं था कि यह छोटी सी घटना अमेरिकी और शायद विश्व इतिहास के सबसे चर्चित घटनाक्रम में शुरुआत भर थी. यह बात जान-बूझकर छुपाई गई थी कि ये पांच लोग, जो प्लंबर के भेष में वाटरगेट घुसे थे, दरअसल वहां के टेलीफोन और वायरिंग से छेड़छाड़ करते हुए पकड़े गए थे. योजना किसी चोरी की नहीं थी. ये सेंधमारी करने वाले वाटरगेट में ख़ुफ़िया टेप लगाने के मक़सद से आए थे. यक़ीनन इसके पीछे कोई राजनीतिक साज़िश थी.

तीन दिनों के बाद यानी 20 जून को *वाशिंगटन पोस्ट* के एक नए पत्रकार ने एक ख़बर छापी. ख़बर में उसने किसी गुमनाम सूत्र के हवाले से बताया था कि सेंधमारी करते पकड़े गए इन अपराधियों के तार एक पूर्व सीआईए एजेंट हावर्ड हंट से जुड़े थे और हावर्ड का साइन किया हुआ एक चेक उनके पास था. हावर्ड को राष्ट्रपति निक्सन के तत्कालीन सलाहकार चार्ल्स कॉलसन का काफी क़रीबी माना जाता था. इस बीच निक्सन राष्ट्रपति चुनाव के लिए दूसरी बार चुने जा चुके थे. उनकी जीत अमेरिकी इतिहास में सबसे बड़ी जीत थी. उधर क़रीब 48 सालों से एफबीआई की कमान संभालने वाले जे एडगर हूवर का निधन हो चुका था. एफबीआई में हूवर का दबदबा ऐसा था कि उनके बदले कमान संभालने वाले की खोज बड़ी मुश्किल थी. निक्सन को लगा एफबीआई पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए यही सही मौका है. उन्होंने अपने पुराने वफादार एल पैट्रिक केसी को एफबीआई का नया निदेशक बना दिया. एक बाहरी आदमी को कमान सौंपने का यह क़दम एफबीआई के कुछ लोगों को बिल्कुल पसंद नहीं आया था.

उधर क़ानूनी शिकंजा सेंधमारी करने वालों पर कसता जा रहा था. हावर्ड हंट भी गिरफ़्तार हो चुका था. उधर *वाशिंगटन पोस्ट* के दो पत्रकार -बॉब वुडवर्ड और कार्ल बर्न्सटाइन-एक के बाद ख़ुलासे करते जा रहे थे. एक के बाद एक बड़े नाम जो निक्सन प्रशासन से जुड़े थे, इस साज़िश के साथ जुड़ते जा रहे थे. इन पत्रकारों को एक गुमनाम शख्स से मदद मिल रही थी. इस शख्स की असली पहचान सिर्फ़ वुडवर्ड को मालूम थी, यहां तक कि *वाशिंगटन पोस्ट* के तत्कालीन संपादक को भी कोई अंदाज़ा नहीं था कि आख़िर यह सूत्र है कौन. इस पूरे कांड में शक़ की सूई सीआईए पर थी. सीआईए के लिए ऐसा करना कोई बड़ी बात नहीं थी.

हालांकि कहानी में मोड़ तब आया जब सेंधमारी करने वालों में से एक जेम्स मैककार्ड ने एक जज को चिट्ठी लिखकर यह आरोप लगा दिया कि असल में इस पूरी कहानी में सीआईए नहीं सरकार ही शामिल है. अब शक़ की सूई व्हाइट हाउस की ओर मुड़ गई.

बर्न्सटाइन और वुडवर्ड

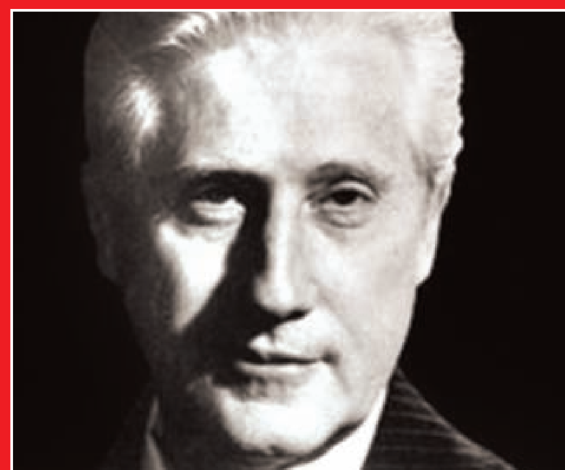

जॉन फेल्ट उर्फ डीप थ्रोट

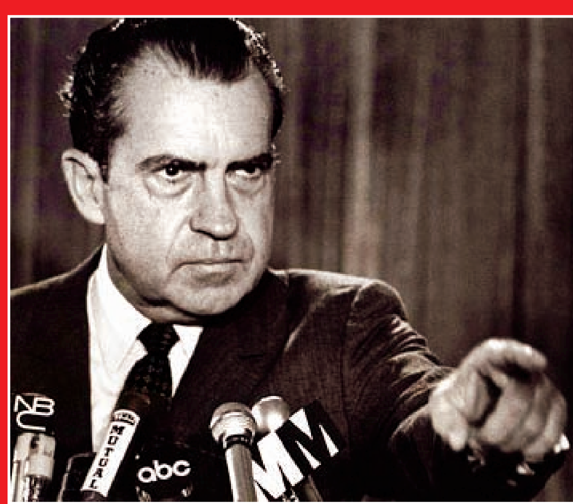

रिचर्ड एम निक्सन

इधर वुडवर्ड और बर्न्सटाइन की मदद करने वाले की खोज भी तेज़ हो गई थी. व्हाइट हाउस ने कई लोगों पर नज़र रखनी शुरू कर दी. इन पत्रकारों के फोन भी अब टैप हो रहे थे. अब वुडवर्ड का अपने सूत्र से मिलना मुश्किल था. इसका भी रास्ता निकाला गया. जब भी वुडवर्ड को अपने इस सूत्र से मिलना होता तो उन्हें अपनी खिड़की पर एक फूलदान रखना होता था. यह ख़ास फूलदान एक इशारा होता था, इसका जवाब वुडवर्ड को उन्हीं के अख़बार के 20वें पन्ने पर छपे एक विज्ञापन के ज़रिए मिलता था. इस तरह मिलने की जगह तय होती थी.

अपनी इन मुलाक़ातों के बारे में कई साल बाद अपनी किताब में वुडवर्ड और बर्न्सटाइन लिखते हैं- ये मुलाक़ातें बहुत ख़ुफ़िया होती थीं. किसी अंधेरे गराज या पुराने ख़ाली घर को मिलने की जगह के तौर पर चुना जाता था. इस किताब में उन्होंने इस ख़ुफ़िया सूत्र को डीप थ्रोट का नाम दिया था. वुडवर्ड के मुताबिक यह नाम उस समय की एक हिट पोर्न फिल्म का शीर्षक था. अजीब बात है कि अमेरिकी इतिहास में बड़ा उलटफेर करने वाला यह शख्स इस नाम से प्रसिद्ध हुआ. डीप थ्रोट से अपनी मुलाक़ातों के बारे में वुडवर्ड लिखते हैं कि डीप थ्रोट अंधेरे में खड़ा होता था, ताकि उसकी शक्ल न दिखाई दे, हालांकि मैं उसकी पहचान जानता था पर वह मेरे सामने भी नहीं आता था.

उधर, एफबीआई भी अपने तरीक़े से जांच में जुटी थी लेकिन उसके निदेशक पर निक्सन का असर था जो उसे रोक रहा था. डीप थ्रोट ने इसी बीच एक ओर सूचना दी. एफबीआई के निदेशक एल पैट्रिक केसी ने हावर्ड हंट के घर से मिली कुछ फाइलें नष्ट कर दी थीं. उनकी छुट्टी हो गई. व्हाइट हाउस के सलाहकार जॉन डीन ने एफबीआई के साथ सहयोग करना शुरू कर दिया. नतीजतन उन्हें भी बाहर का रास्ता दिखा दिया गया. निक्सन प्रशासन के तीन बड़े नामों ने इस्तीफे दे दिए. एक छोटी सी सेंधमारी अब राष्ट्रीय मुद्दा बन चुकी थी.

धीरे-धीरे इस पूरे कांड की परतें खुलीं तो पूरा देश स्तब्ध रह गया. निक्सन को दोबारा चुनने के लिए जो कमेटी बनाई गई थी, उसके कारनामों की पूरी फेरहिस्त सामने आ गई. इस कमेटी ने निक्सन के दुश्मनों की एक सूची तैयार की थी. किसी भी तरीक़े से उन्हें रास्ते से हटाने की योजना बनी थी. वाटरगेट में लगने वाले ये टेप भी इसी साज़िश का हिस्सा थे. इन सभी साज़िशों की रूपरेखा व्हाइट हाउस में रची गई थी. अब इस मामले की जांच सीनेट की कमेटी कर रही थी. इस कमेटी ने व्हाइट हाउस में हुई इस बातचीत के सभी टेप मांग लिए. धीरे-धीरे यह साफ हो गया कि सिर्फ़ बड़े अधिकारी ही नहीं ख़ुद राष्ट्रपति निक्सन भी इस साज़िश में शामिल थे. अब उन पर अभियोग चलाने की तैयारी होने लगी, लेकिन उससे पहले निक्सन ने ख़ुद इस्तीफा दे दिया. इस तरह पहली बार किसी अमेरिकी राष्ट्रपति को इस्तीफा देना पड़ा.

अगले राष्ट्रपति फोर्ड ने सभी अपराधों के लिए निक्सन को माफ़ी दे दी. इस तरह वाटरगेट का पटाक्षेप हो गया. लेकिन यह बात अब भी राज़ थी कि डीप थ्रोट कौन था. कई लोगों के नामों पर कयास लगते रहे. वुडवर्ड और बर्न्सटाइन ने इस राज़ को छुपाए रखा. अगले कई सालों तक यह अमेरिकी ख़ुफ़िया जगत का सबसे बड़ा राज़ बना रहा.

आख़िरकार 2005 में यह राज़ खुला. डीप थ्रोट सामने आया. अमेरिकी सरकार और एफबीआई के लिए चौंकाने वाली बात यह रही कि डीप थ्रोट और कोई नहीं, वाटरगेट के ज़माने में एफबीआई में नंबर दो की कुर्सी पर क़ाबिज़ जॉन फेल्ट थे. फेल्ट के मुताबिक, उन दिनों एफबीआई पर निक्सन के लोगों का भारी दबाव था और उसे ठीक से काम नहीं करने दिया जा रहा था. इसी वजह से उन्होंने वुडवर्ड और बर्न्सटाइन की मदद की. इस तरह अमेरिकी इतिहास के सबसे बड़ी साज़िश के ख़ुलासे के पीछे एफबीआई ही रही आधिकारिक तौर भी, और ख़ुफ़िया तरीक़े से भी.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

ज़रा हट के

नासा ने तैयार किया धरती का पूरा नक़्शा

अमेरिकी स्पेस एजेंसी नासा ने जापानी वैज्ञानिकों के साथ मिलकर पृथ्वी का अब तक का सबसे संपूर्ण और विहंगम नक़्शा तैयार किया है. अपनी तरह के इस पहले डिजीटल नक़्शे में पृथ्वी की 99 फ़ीसदी सतह कवर हो गई है. इसे नाम दिया गया है-ग्लोबल डिजीटल इलिवेशन मैप.

जापान के टेरा नाम के उपग्रह के एक ख़ास उपकरण से पृथ्वी की ये लगभग संपूर्ण तस्वीर उतारी गई है. यह उपकरण दरअसल एक अत्यंत शक्तिशाली डिजीटल कैमरा है और इसका नाम है एडवांस्ड स्पेसबॉर्न थर्मल एमीशन एंड रिफलेक्शन रेडियोमीटर यानी एस्टर. एस्टर ने जो नक़्शा खींचा है, उसके डेटा में क़रीब 13 लाख तस्वीरें आई हैं. इनमें अमेरिका की मौत की घाटी से लेकर हिमालय की अथाह ऊंचाइयां सब शामिल हैं. सवाल यह है कि पृथ्वी के इस नायाब नक़्शे का आख़िर बुनियादी महत्व क्या है? इस बारे में एस्टर परियोजना से जुड़े वैज्ञानिक माइक अब्राम्स कहते हैं कि एस्टर से प्रकाशित यह पहला सटीक स्थल डेटा है जो इंजीनियरिंग, ऊर्जा दोहन, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, पर्यावरणीय प्रबंधन से लेकर लोक निर्माण उद्यमों, अग्निशमन, भूगर्भ विज्ञान और शहर नियोजन और मनोरंजन जैसे क्षेत्रों में अपनी बेमिसाल भूमिका निभा सकता है. इससे पहले नासा के शटल रडार टोपोग्राफी मिशन ने पृथ्वी के 80 फीसदी स्थल क्षेत्र की तस्वीर उतारी थी.

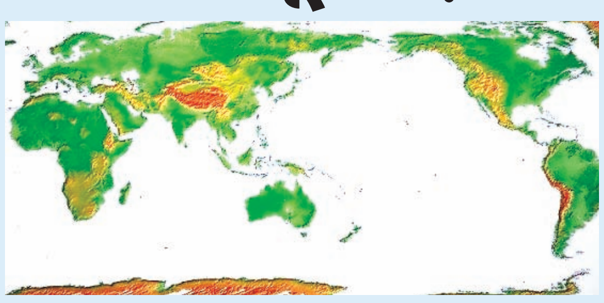

वैज्ञानिकों के मुताबिक एस्टर के नक़्शे से दोनों ध्रुवों के हाल की सटीक जानकारी मिल सकेगी. इस समय जब जलवायु परिवर्तन और खनिज दोहन की वजह से सबका ध्यान पृथ्वी के भूगर्भीय किनारों की ओर खींचा है, तो यह नक़्शा वैज्ञानिकों और सरकारों को मदद पहुंचा सकता है. वैज्ञानिक कहते हैं कि अनाप-शनाप स्थल उपयोग या ग्लोबल वॉर्मिंग या जंगलों के कटाव जैसे संकटों से निपटने के लिए कुछ करने की स्थिति में आने से पहले यह जानना ज़रूरी है कि हमारा ग्रह यानी पृथ्वी दिखती कैसी है. इस नक़्शे के जारी होने के बाद एक दिलचस्प बात भी हुई. जैसे ही यह बताया गया कि इसे फ्री डाउनलोड किया जा सकता है तो नासा की वेबसाइट पर उत्सुकों की बेशुमार भीड़ टूट पड़ी और कुछ ही घंटों में वेबसाइट बैठ गई.

अमेजन में मिली बंदरों की नई प्रजाति

ब्राजील के सुदूर क्षेत्र अमेजन में वानर की नई प्रजाति की खोज हुई है. इस प्रजाति के बंदरों की पूंछ काफी लंबी है. सिलेटी और गाढ़े भूरे रंग के इन बंदरों का वजन एक पाउंड से भी कम है (213 ग्राम) और उसकी पूंछ की लंबाई नौ इंच (240 मिमि) है, जो पैरों तक पहुंचती है.

इस छोटे जीव का संबंध सैडलेबैक टमैरियंस जाति के बंदरों से है, जो अपने विशेष रूप-आकार की वजह से जाने जाते हैं. बंदरों की इस प्रजाति को वैज्ञानिकों ने 2007 की यात्रा के दौरान नॉर्थवेस्टर्न ब्राजील के अमेजन इलाक़े में देखा था. इसे शोधकर्ताओं ने मूरा सैडेलेबैक नाम दिया है.

बंदरों की इस नई प्रजाति की खोज के बारे में इंटरनेशनल जरनल ऑफ प्रिमैटोलॉजी के ऑनलाइन संस्करण में ख़ुलासा हुआ है. इस क्षेत्र में विभिन्न विकास योजनाओं के कारण ये बंदर ख़तरे में हैं. संरक्षणकर्ताओं को डर है अमेजन में हाईवे के कारण वनों को साफ किया जा सकता है. इस क्षेत्र में एक और आशंका प्रस्तावित गैस पाइप लाइन और दो हाइड्रोलैक्ट्रिक डैम्स को लेकर है. जो अभी निर्माण के शुरुआती दौर में हैं.

बंदरों की इस नई प्रजाति से तो यही पता चलता है कि वन जीवन की खोज में अभी बहुत कुछ बाक़ी है. स्टडी के मुख्य लेखक रोहे ने कहा कि वर्ल्ड वाइल्ड पैलेसेस से अभी बहुत सीखना है. वाइल्ड लाइफ कंजर्वेशन सोसायटी ने मैमिराओ, अमन और पियगक्यू-पूरू डेवलपमेंट रिज़र्व की स्थापना कर इसमें मदद की है. डब्ल्यूसीएस के शोधकर्ताओं ने हाल के वर्षों में बंदरों की बहुत सी नई प्रजातियों की खोज की है: 2004 के अंत में भारत में अरुणाचल मैकक्यू की खोज, 2005 में बोल्वियो और तनजेनिया में मैडिडी और किपूनजी बंदरों की खोज आदि. जीईओएमए दरअसल ब्राजील के सांइस एंड टेक्नोलॉजी मंत्रालय की एक परियोजना है जो बंदरों की खोज वाले प्रोजेक्ट में मदद करती है.

सीआईए ने कांग्रेस को गुमराह किया!

अमेरिकी प्रतिनिधि सभा के सात डेमोक्रेट सदस्यों के एक पत्र के अनुसार सीआईए के निदेशक लियॉन पनेटा ने हाल में कांग्रेस के सामने दिए गए एक वक्तव्य में कहा है कि एजेंसी 2001 के बाद से कांग्रेस को गुमराह करती रही है.

26 जून की तारीख़ वाला यह पत्र प्रतिनिधि सभा की सदस्य ऐना ऐशू की वेबसाइट पर प्रकाशित हुआ था. पनेटा को लिखे गए इस पत्र में, जिस पर ऐशू और छह अन्य सांसदों के हस्ताक्षर हैं, कहा गया है-हाल ही में आपने यह बयान दिया है कि आपका निष्कर्ष है कि सीआईए के अधिकारी, 2001 से लेकर इस सप्ताह तक कांग्रेस के सभी सदस्यों से महत्वपूर्ण कार्रवाइयों की जानकारी छिपाते रहे हैं, और उसे धोखे में रखते रहे हैं. पत्र में इस संबंध में कोई ब्योरा नहीं है कि सीआईए के अधिकारियों ने कौन सी जानकारी कथित रूप से छिपाई है या संसद को किस रूप में गुमराह किया है.

पत्र में कहा गया है कि पनेटा को मई में दिया गया वह बयान बदलना चाहिए, जिसमें उन्होंने कहा था कि कांग्रेस को गुमराह करना सीआईए की नीति नहीं है. पनेटा ने यह बयान प्रतिनिधि सभा की अध्यक्ष नैंसी पलोसी के इस आरोप के जवाब में दिया था कि सीआईए ने 2002 में उन्हें दी गई जानकारी में गुमराह किया था. सीआईए का कहना था कि उसने पलोसी को 2002 की उस बैठक में, क़ैदियों से पूछताछ के दौरान इस्तेमाल की जानी वाली कठोर और दर्दनाक प्रक्रिया की जानकारी दी थी, जैसे कि पानी में डुबोए जाने का अहसास देने वाली वॉटरबोर्डिंग की तकनीक के बारे में बताया था. अब पलोसी की बात से ऐसा लगता है कि वह इस बहस को तूल नहीं देना चाह रही हैं. कांग्रेस और सीनेट, दोनों की ख़ुफ़िया समितियां गोपनीय मामलों की देखरेख के लिए ज़िम्मेदार हैं.

लेकिन पलोसी ने कहा है कि पनेटा का बयान कांग्रेस की ख़ुफ़िया समिति के लिए चिंताजनक है. दूसरी ओर रिपब्लिकनों का कहना है कि डेमोक्रेट मामले को राजनीतिक रंग दे रहे हैं और कि पनेटा के बयान के बारे में लिखा गया पत्र, पलोसी को आगे और आलोचना से बचाने का प्रयास भर है. सदन के रिपब्लिकन नेता जॉन बेनर ने कहा है कि नई सूचना से पलोसी की यह बात सही साबित नहीं होती कि सीआईए ने कांग्रेस को गुमराह किया है. मुश्किल यह है कि संबद्ध जानकारी गोपनीय होने के कारण डेमोक्रेट और रिपब्लिकन, दोनों में से कोई भी पक्ष उसके बारे में बात नहीं कर सकता. न ही सीआईए ख़ुफ़िया जानकारी के संबंध में कोई टिप्पणी करती है. सीआईए ने इतना भर कहा है कि कांग्रेस को गुमराह करना उसकी नीति नहीं है, न ही उसके आचरण का हिस्सा.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

अल्पसंख्यकों ने दी चीन को चुनौती

राहुल मिश्र

चीन गणराज्य के पश्चिमी छोर पर जिनजियांग इलाक़ा आज किसी युद्धक्षेत्र की सूरत में है. हज़ारों की संख्या में तैनात सेना की टुकड़ियों को देखकर साफ है कि यहां दो गुटों में वर्चस्व की लड़ाई ही नहीं चल रही, यह तो चीन सरकार के अस्तित्व का भी सवाल है. उइगर और हान समुदायों के बीच शुरू हुए दंगों का दमन करने के लिए चीन सरकार की कार्रवाई में सैकड़ों उइगरों की मौत हो गई और हज़ारों घायल हुए. वहीं अल्पसंख्यकों के साथ विवाद में हान समुदाय और चीन सरकार के बीच सांठगांठ ने मामले को और भी उलझा दिया है...

2008 में हुए तिब्बत विद्रोह के बाद यह सबसे बड़ा मामला है, जो एक बार फिर साफ करता है कि चीन में नागरिकों को कोई अधिकार नहीं है. बिना किसी अधिकार के इस तरह की नागरिकता अल्पसंख्यकों के किसी काम की नहीं है. चीन के जिनजियांग प्रांत में अल्पसंख्यक उइगरों और हान समुदाय के सदस्यों के बीच जातीय तनाव लगातार बढ़ता ही जा रहा है. ग़ौरतलब है कि उइगर 26 जून को गुआंगदोंग प्रांत की एक खिलौना फैक्टरी में हुए एक विवाद में दो उइगर कर्मचारियों की मौत का विरोध कर रहे थे, जिसके दौरान वहां दोनों गुटों में तनाव पैदा हो गया. इसने जल्द ही दंगों का स्वरूप ले लिया. चीन की पुलिस ने राजधानी उरुमकी में भड़के दंगों केसिलसिले में 1434 लोगों को गिरफ़्तार किया है.

वैसे इन दंगों से दो बात एकदम सामने आ रही है जो 21 वीं सदी में चीन के लिए अहम है. पहली बात तो यह कि जहां एक तरफ़ चीन की आर्थिक समृद्धि और तेज़ी से बढ़ती विकास दर की बात हो या फिर शंघाई में सरपट दौड़ती बुलेट ट्रेन या बीजिंग ओलंपिक के बाद उभरे एक विकसित और प्रगतिशील समाज की, आज का चीन अभी भी एक साम्राज्य की तरह ही है, जिसे अभी राज्य बनने में समय लगेगा. दूसरा, अगर चीन का यह एंपायर वास्तव में दुनिया पर राज करने के लिए तैयार हो रहा है, जैसा कि हाल की एक किताब दावा कर ही है, तो क्या दुनियाभर को चीन के इस वास्तविक रूप को देखने के लिए तैयार रहने की ज़रूरत है ? आज जिंनजियांग और ल्हासा की सड़कों का दृश्य क्या भविष्य में दुनिया भर में देखने को मिलेगा.

तिब्बत और जिनजियांग के जबरन विलय की नीति तब क्रियान्वित हुई जब मज़बूत नेता माओत्से तुंग ने दोनों विद्रोही क्षेत्रों के बीच एक गलियारा बनाने के लिए भारत के अक्साई चिन क्षेत्र में 38 हज़ार वर्ग किलोमीटर ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लिया. क़रीब-क़रीब स्विट्जरलैंड जितने इस क्षेत्र पर 1950 के दशक में चुपचाप क़ब्ज़ा कर लिया गया. इसके बाद माओ ने उस पर हक़ जता दिया और 1962 में भारत के ख़िलाफ़ युद्ध करके इसे चीन के अधीन कर लिया. तिब्बत और जिनजियांग के बीच अक्साई चिन के कुनमुन पहाड़ों से होकर एकमात्र रास्ता है. यथार्थ यह है कि चीनी गणराज्य का क़रीब 60 प्रतिशत भू-भाग ऐसा है जिस पर सीधे हान शासन नहीं चलता था. क्षेत्र के हिसाब से हान सत्ता अपने उत्कर्ष पर है. यह इस बात से पता चलता है कि चीन की दीवार चीन के बाहरी क्षेत्र के घेरे में बनाई गई थी. आज जिनजियांग और तिब्बत का क्षेत्रफल चीन के भू-भाग का क़रीब-क़रीब आधा है. मांचू समुदाय के हान समाज में विलय और स्थानीय लोगों के पलायन के बाद अब केवल तिब्बती और जिनजियांग में तुर्की भाषी मुस्लिम जातीय समाज ही चीन में भिन्न समुदाय के रूप में शेष रह गए हैं. पिछले साल से सामने आईं कुछ घटनाएं यह बताती हैं कि इन दोनों प्रांतों में चीन के नेतृत्व की नीतियां कारगर सिद्ध नहीं हो रही हैं. इन क्षेत्रों में आर्थिक विकास मुख्यत: यहां की प्राकृतिक संपदा के दोहन को ध्यान में रखते हुए किया गया है. इससे हाशिए पर पड़े स्थानीय निवासियों को अधिक लाभ नहीं हुआ है. यथार्थ यह है कि एक ओर जहां स्थानीय लोग मुख्य रूप से मज़दूरी कर रहे हैं, वहीं हान समुदाय के लोग मोटे वेतन की नौकरियों पर क़ब्ज़ा जमाए बैठे हैं.

अधिक महत्वपूर्ण यह है कि ग़ैर-हान संस्कृति के लोगों के अस्तित्व पर ख़तरा पैदा हो गया है. स्कूल के समय से ही अपने सिद्धांतों की घुट्टी पिलाने और उनकी मातृभूमि पर दमनकारी राजनीतिक शासन थोपने की चीन की नीतियों के कारण तिब्बत और जिनजियांग प्रांतों में अधीनता के साथ-साथ गुस्से की भावना भी भर गई है.

जनसांख्यिकीय (डेमोग्राफिक) रूप से चीन जातीय सफाया नहीं कर रहा, बल्कि वहां की सरकार जातीय पहचान को ही ख़त्म करने का प्रयास कर रही है. हान जाति के लोगों को पश्चिमी चीन में बसने को प्रोत्साहित कर जातीय पहचान को ही मिटाने की साज़िश हो रही है, जो सांस्कृतिक विनाश के समान है. तिब्बती और उइगर भाषा भी स्थानीय स्कूलों से ग़ायब हो रही हैं. उनके मूल वातावरण को तेज़ी से चीनी रंग में ढालने से तिब्बतियों और उइगरों में पहचान और स्वतंत्रता की चाहत का बोध गहरा हुआ है.

इतना तय है कि हमें जिनजियांग में हताहत और गिरफ़्तार लोगों की वास्तविक संख्या कभी पता नहीं चल पाएगी. तिब्बत और जिनजियांग में समस्या शुरू होते ही चीन क्षेत्रीय स्तर पर इंटरनेट और सेलफोन सेवा बंद कर देता है और वहां मार्शल ला जैसा कर्फ्यू थोप देता है, ताकि दुनिया को इसकी ख़बर न लग सके कि उसके देश में क्या हो रहा है? सूचना के सभी माध्यमों पर पूरी कठोरता से पाबंदी लगा देने के बाद उसके लिए विद्रोह की किसी भी कोशिश को ताक़त के बल पर कुचलना आसान हो जाता है.

उरुमकी में भड़के दंगों के संदर्भ में शायद ही कोई हताहतों की आधिकारिक संख्या पर विश्वास करे. आख़िर यह विश्वास किया भी कैसे जाए, क्योंकि हमारे सामने यह उदाहरण मौजूद है जब चीन की सरकार ने पिछले साल तिब्बत में मरने वाले लोगों की संख्या मात्र 13 बताई थी. वहीं, तिब्बत की निर्वासित सरकार ने 220 मौतों की बात कही थी. चीन के नेतृत्व के झूठ की यह तो एक बानगी मात्र है.

तिब्बत और जिनजियांग में हिंसा के बीच महत्वपूर्ण समानता है. दोनों प्रांतों की राजधानियों- ल्हासा और उरुमकी में शांतिपूर्वक प्रदर्शन करने वालों को अधिकारियों द्वारा इधर-उधर करने की कोशिश केबाद ही जातीय उन्माद भड़का. इन जगहों पर अब हान लोग मूल निवासियों से अधिक हो गए हैं. जिस प्रकार चीन ने तिब्बत के विद्रोह के लिए दलाई लामा को दोषी ठहराने में देर नहीं की थी, उसी प्रकार जिनजियांग में ख़ूनख़राबे के लिए उसने निर्वासित उइगर नेताओं, ख़ासतौर से वाशिंगटन स्थित रेबिया कदीर को जिम्मेदार ठहरा दिया है. हालांकि पूर्व व्यवसायी कदीर हिंसा की वकालत नहीं करतीं. उन्होंने छह साल चीन की जेलों में बिताए हैं और अब भी उनके दो बेटे जिनजियांग की जेल में बंद हैं.

चीन की जातीय समस्या का तब तक हल नहीं निकलेगा, जब तक यह जबरन सांस्कृतिक क़ब्ज़े को नहीं रोकेगा. वास्तव में, कम्युनिस्ट व्यवस्था का केंद्रीय भाव तो तानाशाही से ही उपजता है. राष्ट्रपति हू जिंताओ जब सौहार्दपूर्ण समाज का नारा लगाते हैं तो उनके इस नारे का मतलब सांस्कृतिक समरूपता को प्रमाणित करने से होता है. भारत विविधता का सम्मान करता है, जबकि चीन इसके ठीक विपरीत सांस्कृतिक समानता के नाम पर अधिनायकवादी प्रवृत्ति को अपनाता और प्रोत्साहित करता है. 2008 में तिब्बती विद्रोह के बाद 2009 उइगर बग़ावत के लिए जाना जाएगा और इससे कम्युनिस्ट चीन की जन्मदिन पार्टी का बेरंग हो जाना तय है.

rahul.chauthiduniya@gmail.com

पाक को नुमाइंदों ने भी पस्त किया

पाकिस्तान में तालिबान की जड़ें क़ायम करने के लिए हमारे नेता बड़े ज़ोर-शोर से सेना को गुनहगार ठहरा चुके हैं, लेकिन यह बताने का साहस उनमें नहीं है कि इसमें ख़ुद उनकी क्या भूमिका है. आज जिस तरह से आतंकवाद पाकिस्तान में जड़ें जमा चुका है, उसके लिए व्यवस्था की ख़ामियों के साथ-साथ हमारे नुमाइंदे भी उतने ही गुनहगार हैं, क्योंकि यह व्यवस्था जनता के इन्हीं नुमाइंदों की देन है. नब्बे के दशक में दोनों राजनीतिक दल- पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी और पाकिस्तान मुस्लिम लीग को पाकिस्तान की जनता से मज़बूत जनादेश मिला, लेकिन उन्होंने इन मौक़ों को अपनी आपसी रंज़िश में गंवा दिया, जबकि उन्हें चाहिए था कि पाकिस्तान की व्यवस्था में से ख़ामियों को दूर करने के लिए कोई कारगर क़दम उठाते. अपने शासन में दोनों ही पार्टियों की सरकारों ने पाकिस्तान की अफ़ग़ान नीति पर न ही कभी पार्लियामेंट में बहस छेड़ने की कोशिश की और न ही उस पर सवाल ही खड़े किए. लेकिन पीपीपी और पीएमएल से भी बढ़कर वे मज़हबी पार्टियां हैं जो इसके लिए ज़्यादा ज़िम्मेदार रहीं लेकिन आज भी वे मौके का फ़ायदा उठाने से नहीं चूक रही हैं. बल्कि उनके तो दोनों हाथों में लड्डू हैं.

दोनों ही मज़हबी गुट, जमात-ए-इस्लामी और जमात-ए-उलेमा ऑपरेशन राहत-ए-रश्त का विरोध कर रहे हैं. दोनों की दलील है कि ऑपरेशन के नाम पर पाकिस्तानी सेना का ड्रामा चल रहा है. वास्तविकता जबकि यह है कि पाकिस्तान को तालिबान की गिरफ़्त में ले जाने के लिए सेना ख़ुद ज़िम्मेदार है. इन दोनों मज़हबी दलों का यह बयान उनके सांसदों की तरफ़ से पार्लियामेंट में रखा गया. इन बयानों में जो बात नहीं कही गई, वह है इस सिलसिले में निभाई गई ख़ुद उनकी भूमिका. यह कौन नहीं जानता कि 80 और 90 के दशक में ज़रूरत पड़ने पर उन्होंने ख़ुद सेना की हमेशा मदद की. साथ ही मस्जिद और मदरसों का इस्तेमाल करके पाकिस्तानी समाज को बांटने का काम किया. नतीजतन, आज पाकिस्तान आपसी तनाव और मज़हबी विवादों में फंसा है.

आज पाकिस्तानी सेना के ऑपरेशन का विरोध कर रहा जमात-ए-इस्लामी, एक वक़्त में ज़िया-उल-हक़ और मदूदी के साथ मिलकर पाकिस्तान के इस्लामीकरण को अंजाम दे रहा था. जमात-ए-इस्लामी, जो मदूदियों के कट्टर इस्लाम को मानता है, ने ज़िया के शासनकाल में अफ़ग़ान नीति बनाने में मदद की और अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिका के लिए युद्ध में लड़ने की नीति बनाई. आज हम आतंकवाद की जिस समस्या से जूझ रहे हैं, वह उन्हीं नीतियों का नतीजा है. जमात-ए-इस्लामी को अमेरिका में अफ़ग़ानी जिहाद के लिए लड़ने में कोई परेशानी महज़ इसलिए नहीं थी कि करोड़ों डॉलर उस नीति में बरस रहे थे, बल्कि इन नीतियों से पाकिस्तान में मुल्ला ताक़तवर हो रहे थे. जमात-ए-इस्लामी राजनीतिक तौर पर भले ही जमात-ए-उलेमा का कट्टर विरोधी है, लेकिन उसने सोवियत संघ की वापसी के बाद उलेमाओं के मदरसों और ट्रेनिंग कैंपों में पनप रहे तालिबानियों के ख़िलाफ़ कभी आवाज़ नहीं उठाई. न ही उन्होंने कभी अफ़ग़ानिस्तानी मुस्लिमों के ख़िलाफ़ जारी जंग की आलोचना की. लिहाज़ा, उनका आज पाकिस्तानी सेना का विरोध करना, वह भी इस बिना पर कि मुसलमानों का क़त्ल हो रहा है और स्वात और फाटा में अमेरिका का युद्ध लड़ा जा रहा है, न सिर्फ़ बेबुनियाद है बल्कि विरोधाभासी भी है.

तालिबान नीति को 90 के दशक में लागू किया गया. उस समय पाकिस्तान में पीपीपी की सरकार थी. पीपीपी सरकार ने मौलाना फ़ज़लुर रहमान की मदद से उनके मदरसों का इस्तेमाल करते हुए और सऊदी अरब के फंड के ज़रिए दोनों अफ़ग़ानी रिफ्यूजी और पाकिस्तानी युवाओं को जिहाद के लिए हथियारों की ट्रेनिंग देने का काम किया.

इस पूरे ऑपरेशन को आईएसआई की शह पर चलाया गया. ट्रेनिंग के साथ-साथ इन मदरसों कट्टर आतंकवादियों की पूरी फौज खड़ी कर दी गई. जमात-ए-उलेमा के मदरसों में ट्रेनिंग देकर पाकिस्तानी छात्रों को मुल्ला उमर के लड़ाकों में शामिल कर दिया गया. मुल्ला उमर ख़ुद मौलाना सामी-उल-हक़ के मदरसे का पढ़ा हुआ है. अफ़ग़ानिस्तान में तालिबान को पाकिस्तान से लड़ाके, हथियार और फंड के ज़रिए मदद की गई. इस दौरान तालिबान मुसलमानों का ही क़त्ल कर रहा था.

आज का तालिबानी नेतृत्व उन्हीं मदरसों की देन है, जहां उनको इस्लाम का कट्टर सबक़ दिया गया और जिसे अपने मंसूबों को पाने के लिए आतंकवाद के रास्ते पर भेज दिया गया. इस नेतृत्व को पाकिस्तान के मुल्ला और मौलवियों की शह और सहमति शुरू से मिलती रही है. इन आतंकवादियों के रिफ्यूजी कैंपों में परवरिश की गई और फिर जमात-ए-उलेमा के मदरसों में आतंकी तालीम दी गई, जहां तालीम की देवबंदी धारा वहाबी के प्रति नर्म रवैया अपनाती है. वहीं अफ़ग़ानी और पाकिस्तानी तालिबानियों को पश्तूनों के बराबरी के समाज से कुछ लेना-देना नहीं है और वास्तव में इनको फ़साद करने वाले की संज्ञा दी जा सकती है. अमेरिका में 11 सितंबर के हमलों के बाद तालिबानी और अलक़ायदा लड़ाकों को मुशर्रफ़ की पाकिस्तानी तालिबान को मज़बूत करने की कोशिश के चलते फाटा में बसा दिया गया. मुशर्रफ़ की इस नीति का न ही किसी मज़हबी पार्टी और न ही सियासत के किसी खेमे ने विरोध किया. मुशर्रफ़ की इस कोशिश के बाद पाकिस्तान में तालिबान एक मज़बूत फौज बन गई और इस दौरान इलाक़ाई क्रिमिनल्स, नशे के सौदागरों और हथियार के अंतरराष्ट्रीय सौदागर भी तालिबान के साथ हो गए. लेकिन, हाल की घटनाओं से तालिबान के लिए विपरीत परिस्थिति पैदा हो गई. नार्थ वेस्ट प्रोविंस और पंजाब में आईएसआई और आम जनता को निशाना बनाने के लिए किए गए धमाकों से तालिबान ने पाकिस्तानी सेना का ध्यान फाटा और स्वात से खींचने की कोशिश की, ताकि वह पाकिस्तान के क़बाइली इलाक़ों को आतंकवाद के लिए इस्तेमाल करता रहे. आज जमात-ए-उलेमा एक सुर में तालिबान के ख़िलाफ़ चलाए जा रहे सेना के अभियान का विरोध कर रहा है. एक सवाल यहां लाज़िमी हो जाता है कि क्यों अफ़ग़ानिस्तान में पश्तून और शिया मुसलमानों के ख़िलाफ़ जारी पाकिस्तान का जिहाद जायज़ था और क्यों पाकिस्तानी सेना का तेहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान का सफ़ाया करने के लिए चलाई जा रही मुहिम नाजायज़ है? कहीं ऐसा तो नहीं कि अगर मौलवी और मुल्ला कोई जंग लड़ें तो वह जिहाद है और अगर सेना किसी जंग को अंजाम दे रही है तो वह ग़ैर-इस्लामी करार दी जाएगी और वह मुसलमानों के क़त्ल के बराबर होगा. आज जब पाकिस्तान इस ख़तरनाक दौर से गुज़र रहा है, तो जनता की नुमाइंदगी कर रहे नेताओं को भी ज़िम्मेदार ठहराने की ज़रूरत है. ये नेता उस समय क्यों ख़ामोश थे, जब तालिबान पाकिस्तान के क़बाइली इलाक़ों में अपनी जड़ें जमा रहा था.

मौजूदा दौर में पीपीपी को चाहिए कि वह कुछ अहम और कड़े फ़ैसले ले और दुश्मनों का जम कर सामना करे. इसके अलावा पीएमएल को भी मुस्तैदी के साथ मोर्चा लेने की ज़रूरत है. जो दो राजनीतिक दल आज खुलकर तालिबान के ख़िलाफ़ मैदान में आए हैं, एमक्यूएम और एएनपी, वे कराची में आपसी झगड़े में उलझे हुए हैं. पाकिस्तान आज जंग लड़ रहा है. सभी राजनीतिक दल, मज़हबी और सेक्यूलर पार्टियों को चाहिए कि वे मज़हबी कट्टरवाद को ख़त्म करने के लिए एकजुट हों. इस जंग में विस्थापित हो रहे लोगों के पुनर्वास में सहयोग करें और युद्ध क्षेत्र के पुनर्निर्माण के साथ-साथ यह कोशिश करें कि पाकिस्तान के उन इलाक़ों में एक बार फिर पाकिस्तान सरकार के नियम और क़ानून प्रभावी बनाए जा सकें. सच्चाई तो यह है कि जनता के नुमाइंदों और मज़हबी नेताओं को ख़ुद का *राह-ए-रस्त* ऑपरेशन चलाना चाहिए और जनता के बीच जाकर अपनी पुरानी ग़लतियों को मान कर पाकिस्तान को भविष्य में एक मज़बूत और प्रोग्रेसिव देश बनाने की कोशिश करनी चाहिए.

एफ तलत, पाकिस्तान से
feedback.chauthiduniya@gmail.com

सफाई के नाम पर और मैली हुई नर्मदा

संध्या पाण्डे

हिंदू पुराणों में शिवपुत्री नर्मदा को गंगा से भी पवित्र नदी माना गया है. जनश्रुति है कि पवित्र नदी गंगा वर्ष में एक बार काली गाय के रूप में नर्मदा में स्नान करने आती है और पवित्र होकर श्वेतवर्णी गाय के रूप में फिर से स्वस्थान लौट जाती है. नर्मदा पुराण में कहा गया है कि नर्मदा के दर्शन मात्र से पापियों का पाप नाश हो जाता है. लेकिन आज कठोर सच यह है कि पवित्र नर्मदा नदी मानव जन्य प्रदूषण के कारण अपवित्र और गंदी हो गई है. कहीं-कहीं तो नर्मदा क जल स्नान के लायक भी नहीं बचा है. भारत सरकार ने मध्यप्रदेश की नर्मदा, क्षिप्रा, बेतवा और ताप्ती नदियों को प्रदूषण मुक्त करने के कार्यक्रम के लिए 15 करोड़ रुपये की विशेष सहायता दी है, लेकिन काम इतनी धीमी गति से और बेतरतीब तरीक़े से हो रहा है कि इन नदियों में जल प्रदूषण की समस्या जस की तस बनी हुई है.

नर्मदा भारत की पांच बड़ी नदियों में गिनी जाती है, जो पश्चिम की ओर बहकर अरब सागर में गिरती है. मध्यप्रदेश के अमरकंटक पर्वत की मेकल पर्वत श्रेणी से निकली नर्मदा नदी 1312 किलोमीटर का लंबा सफ़र तय करके गुजरात में भड़ूच के समीप अरब सागर की खंबात की खाड़ी में समुद्र से जा मिलती है. नर्मदा मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात राज्यों में बहती है, लेकिन नदी का 87 प्रतिशत जल प्रवाह मध्यप्रदेश में होने से इस नदी को प्रदेश की जीवन रेखा कहा जाता है. आधुनिक विकास प्रक्रिया में मनुष्य ने अपने थोड़े से लाभ के लिए जल, वायु और पृथ्वी के साथ अनुचित छेड़छाड़ कर इन प्राकृतिक संसाधनों को जो क्षति पहुंचाई है, उसके दुष्प्रभाव मनुष्य ही नहीं बल्कि जड़, चेतन, जीव, वनस्पतियों तक को भोगना पड़ रहा है. नर्मदा तट पर बसे गांव, छोटे-बड़े शहरों, छोटे-बड़े औद्योगिक उपक्रमों और रासायनिक खाद और कीटनाशकों के प्रयोग से की जाने वाली खेती के कारण उदगम से सागर विलय तक नर्मदा प्रदूषित हो गई है और नर्मदा तट पर तथा नदी की अपवाह क्षेत्र में वनों की कमी के कारण आज नर्मदा में जल स्तर भी 20 वर्ष पहले की तुलना में घट गया है. ऐसे में नर्मदा को प्रदूषण मुक्त करना समय की सबसे बड़ी ज़रूरत बन गई है. लेकिन मध्यप्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र की सरकारें औद्योगिक और कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए नर्मदा की पवित्रता बहाल करने में ज़्यादा रुचि नहीं ले रही हैं.

नर्मदा का उद्गम स्थल अमरकंटक भी शहर के विस्तार और पर्यटकों के आवागमन के कारण प्रदूषित हो गया है, जिससे नर्मदा का जल भी प्रदूषण का शिकार हो गया है. इसके बाद, शहडोल, बालाघाट, मंडला, शिवनी, डिंडोरी, कटनी, जबलपुर, दामोह, सागर, नरसिंहपुर, छिंदवाड़ा, बैतूल, होशंगाबाद, हरदा, रायसेन, सीहोर, खंडवा, इंदौर, देवास, खरगोन, धार, झाबुआ और बड़वानी जिलों से गुज़रती हुई नर्मदा महाराष्ट्र और गुजरात की ओर बहती है. लेकिन इन सभी जिलों में नर्मदा को प्रदूषित करने वाले मानव निर्मित सभी कारण मौजूद हैं. अमलाई पेपर मिल शहडोल, अनेक शहरों के मानव मल और दूषित जल का अपवाह, नर्मदा को प्रदूषित करता है. सरकार ने औद्योगीकरण के लिए बिना सोचे-समझे जो नीति बनाई उससे भी नर्मदा जल में प्रदूषण बढ़ा है. होशंगाबाद स्थित भारत सरकार के क़ागज़ कारखाने और बड़वानी में शराब की फैक्टरी से उन पवित्र स्थानों पर नर्मदा जल गंभीर रूप से प्रदूषित हुआ है. गर्मी में अपने उद्गम से लेकर मंडला, जबलपुर, बरमान घाट, होशंगाबाद, महेश्वर, ओंकारेश्वर, बड़वानी आदि स्थानों पर प्रदूषण विशेषज्ञों ने नर्मदा जल में घातक वैक्टीरिया और विषैले जीवाणु पाए जाने की ओर राज्य सरकार का ध्यान आकर्षित किया है.

मंडला में ही नर्मदा जल में घातक प्रदूषण होने लगा है और जबलपुर आते-आते तो प्रदूषण की समस्या और भी गंभीर हो जाती है. गुजरात में औद्योगिकीकरण ने नर्मदा जल का प्रदूषण स्तर और भी बढ़ाया है. अंकलेश्वर में नर्मदा जल घातक स्तर तक प्रदूषित पाया जाता है. प्रदूषित नर्मदा को पवित्र बनाने और प्रदूषणमुक्त करने के लिए भारत सरकार ने राज्यों को सहायता उपलब्ध कराई है. उसने इसके साथ ही राज्यों को यह महत्वपूर्ण कार्य उच्च प्राथमिकता से करने की हिदायत दी है. लेकिन नर्मदा की पवित्रता बहाल करने के लिए मध्यप्रदेश की भाजपा सरकार बड़ी सुस्त गति से काम कर रही है. नर्मदा के भावनात्मक दोहन और हिंदूवादी राजनीति के लिए इस्तेमाल के मक़सद से भाजपा और राज्य सरकार उत्सव, जुलूस और आयोजनों पर इतना अधिक ख़र्च करती है कि उन आयोजनों से नदी में प्रदूषण और बढ़ जाता है. लेकिन नर्मदा जल की पवित्रता बहाल करने और नर्मदा के किनारे के पर्यावरण को

नर्मदा के भावनात्मक दोहन और हिंदूवादी राजनीति के लिए इस्तेमाल के मक़सद से होने वाले उत्सव, जुलूस और आयोजनों भाजपा और राज्य सरकार इतना अधिक ख़र्च करती है कि उन आयोजनों से नदी में प्रदूषण और बढ़ जाता है.

सुधारने के लिए भाजपा और राज्य सरकार के पास न तो कोई सोच है और न कोई इच्छाशक्ति ही. इस वर्ष मई में राज्य सरकार के नगरीय प्रशासन विभाग ने नर्मदा के उद्गम स्थल अमरकंटक में नदी को प्रदूषण से मुक्त करने के लिए 50 लाख रुपये की मंजूरी दी है. सरकार का मानना है कि उद्गम स्थल से ही पवित्रता बहाल करके नदी को प्रदूषण मुक्त कराया जा सकता है. जबलपुर, होशंगाबाद और दूसरे नगरों में स्थानीय नगरीय संस्थाओं को नर्मदा नदी को प्रदूषणमुक्त करने और तटवर्ती औद्योगिक उपक्रमों को दूषित जल शोधित करने के निर्देश भी दिए गए हैं, लेकिन अभी तक नदी को प्रदूषित करने वाले किसी भी उद्योग के ख़िलाफ़ सरकार ने कोई कड़ी क़ानूनी कार्यवाही नहीं की है. इससे राज्य सरकार की कमज़ोर इच्छाशक्ति का पता चलता है. मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान सीहोर जिले में नर्मदा तट के निवासी हैं और स्वयं को नर्मदा पुत्र बताकर इस क्षेत्र की जनता का भावनात्मक दोहन करते रहते हैं. लेकिन औद्योगिक विकास के नाम पर मुख्यमंत्री बिना सोचे-समझे नए उद्योग लगाने के लिए नर्मदा तट को प्राथमिकता दे रहे हैं. इससे नर्मदा तट के वनों को क्षति हो रही है और नर्मदा जल के प्रदूषण का नया ख़तरा पैदा हो रहा है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

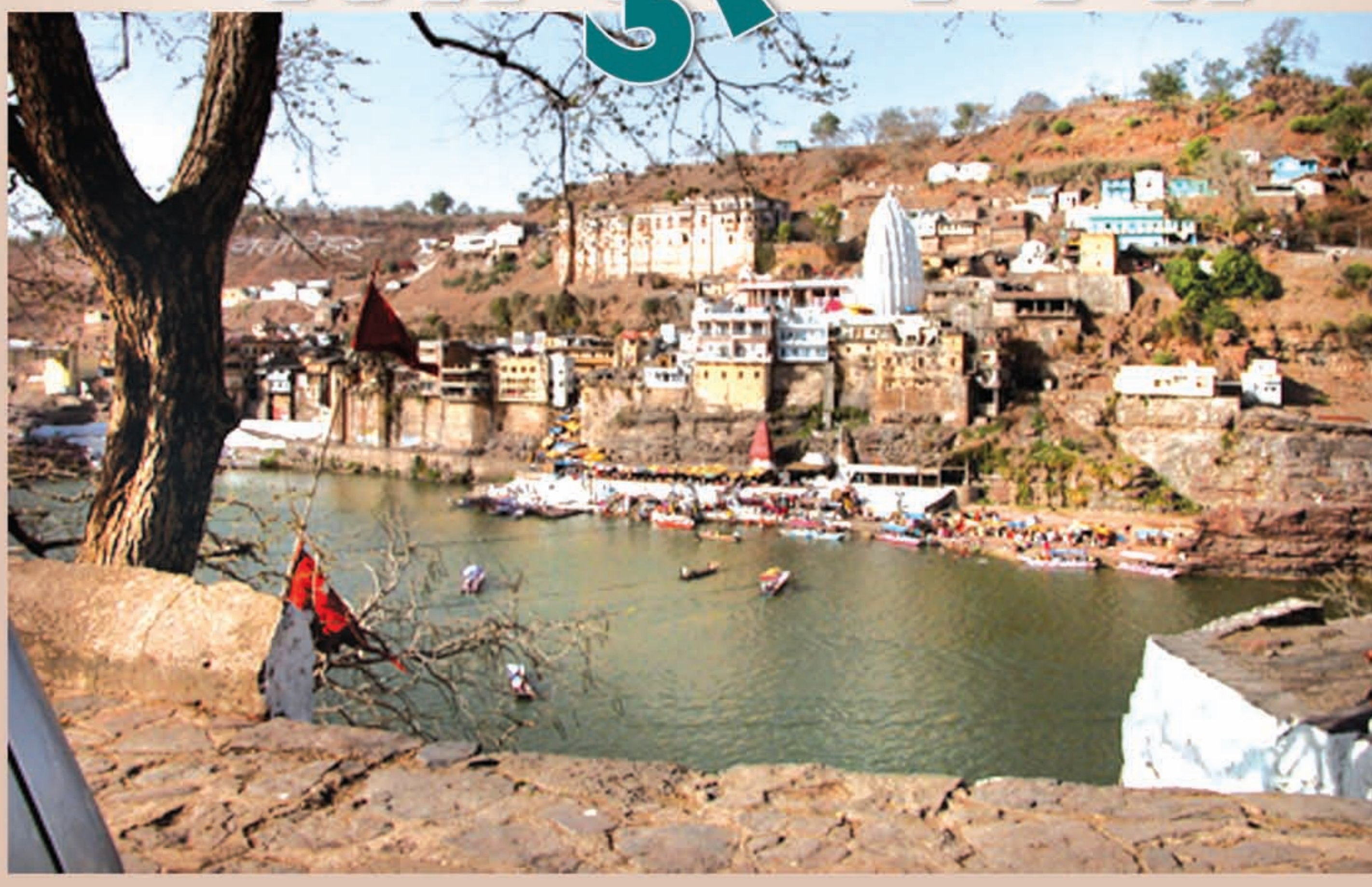

कटनी में भूमि घोटाला

ग़रीबी और पिछड़ेपन का अभिशाप भोग रहे मध्यप्रदेश में भूमि और प्राकृतिक संपदा की खुली लूट करके शासन-प्रशासन के कर्णधार और पूंजीपति भारी लाभ कमाने का कोई अवसर छोड़ते नहीं हैं. मध्यप्रदेश के कई शहरों में आवासीय, व्यावसायिक और औद्योगिक भूमि के सौदों में घपले-घोटाले लगभग आम हो चुके हैं. वन, खनिज संपदा के कारोबार में घोटाले हो ही रहे थे कि अब विकास के नाम पर तरह-तरह से घोटाले किए जा रहे हैं.

एक ऐसा ही मामला हाल ही में कटनी जिले में प्रकाश में आया है. वहां राष्ट्रीय राजमार्ग से कुछ दूर डेढ़ लाख रुपये मूल्य की एक निजी भूमि को सरकार को अधिग्रहण करना पड़ा. लेकिन इसके बदले में उसने इस भूमि स्वामी को 38 लाख रुपये की क़ीमती ज़मीन, जो राजमार्ग के बिल्कुल समीप है, सौंप दी. यह कार्यवाही सरकारी नियमों के अनुसार जिला कलेक्टर, कटनी ने की. कार्यवाही करने वाली कलेक्टर थीं-अंजू सिंह बघेल. इस मामले की अपील जबलपुर संभाग के आयुक्त प्रभात पाराशर ने सुनी और कलेक्टर द्वारा भूमि अदला-बदली का जो आदेश दिया गया था, उसे निरस्त कर दिया. हालांकि अभी अंजू बघेल द्वारा आदेशित ऐसे 11 और मामले हैं जिन पर आयुक्त सुनवाई कर रहे हैं.

ग़ौरतलब है कि मैहर-कटनी राजमार्ग पर भूमि के मूल्य लगातार बढ़ रहे हैं. एक मामले में ग्राम खड़ौली में चरनोई मद में दर्ज़ सरकारी भूमि को कृषि भूमि बता दिया गया और इसे चरनोई मद से अलग कर पंचायत के दस्तावेजों में कृषि योग्य दर्ज़ करा दिया गया. इससे गांव में पशु चारे के लिए चरनोई भूमि बिल्कुल भी नहीं बची और कृषि योग्य घोषित होने के बाद भूमि पर क़ब्ज़ा होने या सरकार द्वारा भूमिहीनों को आबंटित करने का रास्ता खुल गया है. इतना ही नहीं, अंजू सिंह बघेल के कार्यकाल में भूमि की अवैधानिक और अनियमित ख़रीद-बिक्री के कई मामले प्रकाश में आए हैं. आदिवासियों के स्वामित्व वाली भूमि को सामान्य श्रेणी की भूमि दर्ज़ करने और कटनी के माधव नगर में क़ीमती ज़मीन के घोटाले की चर्चाएं जनता और प्रशासनिक हल्के में फैली हुई हैं. जल्दी ही ऐसे मामलों की शिकायतें नए जिला कलेक्टर और संभागायुक्त जबलपुर को की जाएगी. खनिज संपदा से भरपूर कटनी जिले में कोई भी भूमि साधारण नहीं है. बॉक्साइट, चूना पत्थर और अन्य क़ीमती खनिजों की संभावना वाली भूमि पर कटनी जिले ही नहीं, बल्कि मध्यप्रदेश और राज्य से बाहर के खनिज व्यापारियों और खनिज कंपनियों की नज़र लगी रहती है. चूंकि खनिज संपदा से भरपूर भूमि पर माइनिंग लीज या प्रास्पेक्टिंग लीज लेने की एक लंबी, कठिन और ख़र्चीली प्रक्रिया है और ऐसी भूमि के आबंटन का मामला राज्य सरकार में उच्च स्तर तक जाता है. जबकि कृषि भूमि, पड़त भूमि या ग़ैर कृषि भूमि के राजस्व प्रकरण जिला कार्यालय में ही निपटाए जाते हैं. वास्तव में खनिज संपदा की संभावना वाली भूमि बड़े खनिज व्यापारी स्थानीय लोगों के नाम से ख़रीद लेते हैं और उन्हें कुछ पैसा देकर अवैध रूप से खनिज, खनन और परिवहन कर के भारी लाभ कमाते हैं. बाद में वह भूमि छोड़ देते हैं. आरोप है कि कटनी जिले में अंजू सिंह बघेल के कार्यकाल में भूमि के लेन-देन और सौदेबाजी के प्रकरणों में स्थानीय लोगों की आड़ में रीवा, इंदौर, दिल्ली आदि शहरों के कई खनिज व्यापारी शामिल थे. इसलिए इन मामलों की जांच पर स्थानीय जनता ज़ोर दे रही है. लेकिन बताया जाता है कि कलेक्टर बघेल पर दबाव डलवाकर उनसे भूमि प्रकरण निपटवाने की कार्यवाही में कांग्रेस और भाजपा दोनों दलों के बड़े नेताओं ने सक्रिय रुचि ली. इस कारण ही मामलों पर पर्दा पड़ा हुआ है. श्रीमती बघेल का तबादला हो गया है और आजकल वह राज्य सचिवालय में उपसचिव पद पर कार्यरत हैं.

बॉक्साइट, चूना पत्थर और अन्य क़ीमती खनिजों की संभावना वाली भूमि पर कटनी जिले ही नहीं, बल्कि मध्यप्रदेश और राज्य से बाहर के खनिज व्यापारियों और खनिज कंपनियों की नज़र भी लगी रहती है.

संध्या पाण्डे
feedback.chauthiduniya@gmail.com

कन्यादान समारोह में कौमार्य परीक्षण से मध्यप्रदेश सरकार फंसी

मध्यप्रदेश सरकार ने राज्य में एक अजीब परंपरा की शुरुआत कर दी है. सरकार ने पहले तो ग़रीब लड़कियों की शादी की ज़िम्मेदारी यह कहकर उठाई कि प्रदेश की हर लाड़ली लक्ष्मी का भविष्य भाजपा सरकार में सुरक्षित होगा. इसके बाद अपनी इन्हीं लड़कियों को शादी से ऐन पहले सार्वजनिक रूप से कौमार्य परीक्षण के लिए बाध्य कर दिया. सामूहिक समारोह में अपने भविष्य का सपना संजोए पहुंची शहडोल जिले की लगभग पौने दो सौ लड़कियों को समारोह स्थल पर ही कन्यादान योजना का लाभ सामाजिक अपमान के रूप में मिला. सभ्य समाज को शर्मसार कर देने वाली यह घटना 30 जून को शहडोल जिले में आयोजित किए गए सामूहिक विवाह के दौरान घटी. इस अपमान का घूंट सरकारी ख़र्च पर शादी करने पहुंचीं राज्य की 152 बेटियों को पीना पड़ा. जिन्होंने इसका विरोध किया, उन्हें शादी मंडप में नहीं बैठने देने की धमकियां दी गईं. इस कार्यक्रम में भाग लेने वाली प्रत्येक कन्या को उपरोक्त परीक्षण के बाद ही कार्यक्रम में शामिल होने की इजाज़त दी गई. सामाजिक रूप से अपमानित करने की इस घटना के साक्षी बने शहडोल संभागीय मुख्यालय के प्रत्येक अधिकारी और कर्मचारी. ग़ौरतलब है कि ग़रीबों के सम्मान के लिए शिवराज सिंह सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं की धज्जियां अधिकारी और कर्मचारी लगातार उड़ा रहे हैं. दरअसल, शहडोल संभागीय मुख्यालय सोहागपुर स्थित पॉलीटेक्निक कॉलेज में आयोजित इस समारोह में जिले के व्यौहारी, गोहपारू, जैसिंहनगर और बुरहाल जनपत के 152 से अधिक जोड़े शामिल होने के लिए आए थे. जोड़ों के पंजीयन के समय ही ए.डी.एम. सोहागपुर वीएन. राय ने एक मौखिक आदेश दिया, जिसमें उपरोक्त परीक्षण अनिवार्य था. यह आदेश सुनते ही विवाह के लिए आई हुई कन्याओं और उनके परिजनों में रोष फैल गया. कन्याओं ने इस तरह की अपमानजनक जांच कराने से सीधे-सीधे मना कर दिया. इससे माहौल तनावपूर्ण बन गया. इस पर प्रशासन की ओर से कहा गया कि कन्यादान योजना के तहत दी जाने

वाली सामग्री उपरोक्त जांच के बाद ही मिलेगी. ग़रीब घरों से आई इन युवतियां के सामने ए.डी.एम. की बात मानने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था. इस कार्यक्रम में भाग लेने के लिए 18 से 30 साल की कन्याएं आई थीं. इन कन्याओं की जांच के लिए समारोह स्थल पर ही गर्भ परीक्षण का इंतजाम किया गया था और शहडोल की स्त्री रोग विशेषण डॉ. रीना गौतम इसी कार्य के लिए विशेष तौर पर बुलाई गई थीं. दरअसल, इस घटना से चार दिन पहले यानी 26 जून को इसी जिले के व्यौहारी जनपद में सामूहिक विवाह के दौरान मंडप में ही प्रसव की एक घटना घट गई थी. इससे प्रशासन की बड़ी किरकिरी हुई थी. ऐसी घटना फिर न होने देने के लिए जिला प्रशासन ने सरकारी योजना के तहत शादी के लिए आने वाली सभी ग़रीब कन्याओं का गर्भ परीक्षण आवश्यक करा दिया. राज्य शासन द्वारा इस कार्यक्रम के तहत दी जाने वाली सहायता लेना असल में कन्यादान योजना में भाग लेने वाले ग़रीब परिवारों के लिए मजबूरी है. इसी मजबूरी के कारण कन्यादान और लाड़ली लक्ष्मी जैसी योजनाओं में ग़रीब परिवारों की भागीदारी लगातार बढ़ती जा रही है. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव और पूर्व मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने शहडोल जिले में हुई इस घटना की कड़े शब्दों में निंदा की है. उन्होंने कहा है कि कन्यादान जैसी योजना को भी भ्रष्टाचार का साधन बना लिया गया है और इस भ्रष्टाचार को छुपाने के लिए कन्याओं का कौमार्य परीक्षण करना घोर अपमान है. प्रतिपक्ष की नेता जमना देवी ने भी इसकी निंदा की है. उन्होंने कहा कि, इस तरह की घटना उन्होंने न देखी है, न सुनी है. यह नारी जाति का अपमान है और इसे कतई बर्दाश्त नहीं किया जा सकता. दूसरी ओर मध्यप्रदेश के मंत्री कैलाश विजय वर्गीय उपरोक्त परीक्षण में कुछ भी ग़लत नहीं मानते. उनका कहना है कि लोग इस योजना का ग़लत तरीके से लाभ लेने लगे हैं, जिसे रोकना शासन का कर्तव्य है. हालांकि मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने इस तरह के किसी परीक्षण से इंकार किया है. उनके मुताबिक कन्यादान योजना के तहत सामूहिक विवाह से पहले लड़कियों के जो टेस्ट किए गए थे, वे कौमार्य परीक्षण (वर्जिनिटी टेस्ट) नहीं थे. वह सिर्फ़ औपचारिक मेडिकल जांच थी और महिला डॉक्टर ने लड़कियों से कुछ ही सवाल पूछे थे. शहडोल के जिलाधिकारी नीरज दुबे ने भी यूं तो मुख्यमंत्री से सुर मिलाया है, लेकिन लगे हाथ उन्होंने यह भी माना है कि कुछ क्लिनिकल टेस्ट कराए गए थे.

बहरहाल, राज्य की बेटियों के साथ हुई इस अपमानजनक व्यवहार को लेकर राज्य सरकार चौतरफा आलोचना की शिकार हो रही है. राष्ट्रीय महिला आयोग ने भी उससे जवाब तलब कर लिया है. संसद तक में मामला उठ जाने से इस मामले में लीपापोती की भरपूर कोशिश शुरू हो गई है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

छोटी ख़ुशी में बड़ी सफलता न खोएं

रीतिका सोनाली

अक्सर देखा गया है कि सफलता के उच्चतम स्तर तक पहुंचने से ज़्यादा कठिन होता है उस ऊंच मुक़ाम पर बने रहना. किसी भी क्षेत्र में चाहे वह खेल, कला, राजनीति, नौकरी या बिजनेस हो, उसमें कामयाबी पाने के लिए लोग तब तक प्रयास करते हैं जब तक वे मंज़िल तक पहुंच नहीं जाते हैं. इसके बाद देखने में यही आता है कि काफी लोग इस शिखर तक पहुंचने के बाद सफलता की उस ऊंचाई को बनाए नहीं रख पाते. ऐसी ही स्थिति स्कूल से कॉलेज गए छात्रों की भी होती है. पूरी मेहनत के बाद अपने मनपसंद कॉलेज या संस्थान में दाख़िला लेने के बाद वे दोस्तों से घिरे रहने और मस्ती करने या बंक मारने में ही विश्वास करने लग जाते हैं. बातचीत में भी वह एक-दूसरे से कहते हैं-फर्स्ट ईयर इज रेस्ट ईयर. इस तरह वे कामयाबी की पहली सीढ़ी तक तो पहुंच जाते हैं, लेकिन थोड़े समय के बाद इनके करियर का सूरज ढलना शुरू हो जाता है. अर्श पर पहुंचा व्यक्ति किन कारणों से कुछ समय बाद ही फर्श पर आ जाता है, इस बात को समझने में अधिकतर छात्र देरी कर देते हैं और वक़्त हाथ से निकल जाता है. कुछ मुख्य कारणों का ध्यान रखा जाए तो मेहनत से मिली कामयाबी बरकरार रखा जा सकता है.

फोटो-प्रभात पाण्डेय

1. मन को केंद्रित करें -क्लास में कभी भी दोस्त, मस्ती या किसी अन्य विषय पर न सोचें. मन को शांत करके शिक्षक की बातों को सुनें. स्कूल तक ऐसा काम करना बहुत आसान होता है, क्योंकि यहां छात्र शिक्षकों के सीधे संपर्क में रहते हैं. इससे शिक्षक किसी को भी भटकने नहीं देते. लेकिन कॉलेज में शिक्षक के साथ छात्रों का ऐसा सीधा रिश्ता नहीं होता. वहां किसी बड़े की नज़र से मुक्त होने को बंधन से आज़ादी मान बैठने वाले भारी ग़लतफहमी के शिकार हो जाते हैं. ऐसे में कमज़ोर इच्छाशक्ति वालों का ध्यान पढ़ाई से भटक जाता है.
2. कारणों का पता लगाएं- यदि समय के साथ क्लास में आपकी परफॉरमेंस में लगातार गिरावट आ रही है तो घबरा कर ऐसी-वैसी हरकत न करें. विफलता के पीछे के कारणों का शांत मन से पता लगाने की कोशिश करें. विफलता के कारणों को लेकर आप अपने परिवार, सहयोगी या अन्य किसी मित्र विशेष से विचार-विमर्श कर सकते हैं.
3. मंज़िल से पहले न रुकें- कई बार शुरुआत में मिली मामूली सफलता को ही कामयाबी समझ कर लोग असली मंज़िल तक पहुंचने से रह जाते हैं. अगर आप लंबी पारी खेलना चाहते हैं तो करियर के शुरुआती स्तर यानी बेहतर और मनपसंद कॉलेज के नशे में चूर न हों. कुछ और बेहतर करने का जज़्बा भी मन में बनाएं रखें. इससे आपकी कार्यशैली में भी निखार आएगा और आप ख़ुद ही आगे बढ़ने के लिए मोटीवेट होंगे.
4. एथिक्स से समझौता न करें- अपने आत्मसम्मान, सुविचारों और एथिक्स से कभी समझौता न करें. कामयाब होने के बाद भी अपनी सही आदतों को सिर्फ़ दिखावे के लिए न बदलें. ऐसा करके निश्चित तौर पर आप कामयाबी के शिखर पर लंबे समय तक टिके रहेंगे और दोस्तों के बीच अपनी अलग पहचान बनाएंगे. आप जो हैं, उससे ही सब आपका सम्मान करे, यही असली सम्मान होता है. ऐसे में आपका आत्म-विश्वास भी बढ़ता है.
5. साथियों को न भूलें- कामयाब होने के बाद बुरे समय में साथ देने वाले साथियों को सदा सम्मान दें. उन्हें कभी यह महसूस न होने दें कि अब आपको उनकी ज़रूरत नहीं है. यदि आप उन्हें भूल जाएंगे तो कामयाबी का लड्डू कभी भी आपके हाथ से फिसल सकता है. अक्सर देखा गया है कि सफल होने के बाद मिली सराहना और प्रतिष्ठा के बाद व्यक्ति में बदलाव आने लगते हैं. वह कामयाब होने के बाद ख़ुद को औरों से बेहतर समझने लगते हैं, यही घमंड उसे सदा के लिए शिखर पर बने नहीं रहने देता है. अपने पुराने दोस्तों, शिक्षकों की कद्र करें और वक़्त पड़ने पर उनसे सलाह-मशविरा करें. याद रखें, वे आपके पुराने दोस्त हैं जो आपके स्वाभाव से परिचित हैं और आपके बारे में नए दोस्तों से बेहतर राय दे सकते हैं.
6. स्वस्थ रहें, ख़ुश रहें- करियर की पहली सीढ़ी पर पहुंच कर ख़ुद को इतना न उलझा लें कि ख़ुद के लिए समय न मिल पाए. हमेशा ध्यान रखें कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है.

पढ़ाई के अलावा अपने स्वास्थ्य और मनोरंजन पर भी ध्यान दें.

ritika.chauthiduniya@gmail.com

सामान्य सिर दर्द नहीं माइग्रेन है

कल्पना कीजिए, आप अपने सहयोगी से बात कर रहे हों, तभी आपकी दृष्टि धुंधली पड़ जाए और आपकी आंखें चौंधिया देने वाली रोशनी महसूस करने लगे. निश्चय ही उस समय आप अच्छा महसूस नहीं करेंगे. इसके बावजूद, आप बातचीत का सिलसिला जारी रखने की कोशिश करेंगे, लेकिन उस समय आपको किसी शब्द को याद करने में दिक़्क़त होगी. उसके 25 मिनट बाद आप कार्यालय से घर वापस आ जाएंगे. घर आते ही आपको ऐसा लगेगा कि आपका सिर दर्द से फटा जा रहा है. हर आवाज़ आप के लिए तेज़ और रोशनी आपके लिए असहनीय हो जाएगी. आप इसे अब तक सामान्य सिरदर्द समझ कोई दर्दनाशक टिकिया खोज रहे होंगे. लेकिन ठहरिए. यह कोई सामान्य दर्द नहीं है. दिल्ली स्थित राम मनोहर लोहिया अस्पताल के न्यूरो सर्जन डॉ. अजय चौधरी के मुताबिक यह माइग्रेन है.

क्या है माइग्रेन

माइग्रेन एक विशेष प्रकार का दर्द है. यह हमेशा टीस मारने वाले दर्द से शुरू होता है. यह प्राय: ललाट और सिर के एक भाग में होता है. इसमें अरुचि, तनाव, आंख चौंधिया देने वाली रोशनी और दूसरे प्रकार के विज़ुअल डिस्टर्बेंस का अनुभव होता है. माइग्रेन कमज़ोरी, अनिद्रा और काम करने के तरीक़े से हो सकता है. जो माइग्रेन से पीड़ित हैं वे हमेशा अंधकारमय कमरे में आराम करना पसंद करते हैं. यह बहुत ही तेज़ी से हमला करता है और उम्र के साथ कम होता जाता है. वैसे तो तेज़ दर्द मुख्य रूप से कुछ ही घंटे के लिए रहता है. लेकिन कुछ लोगों में यह दर्द कई दिनों तक जारी रहता है. ग़ौरतलब है कि इसके कुल पीड़ितों की संख्या में से एक तिहाई तो महिलाएं हैं.

माइग्रेन के लिए प्राकृतिक उपचार

खानपान : माइग्रेन से निज़ात पाने के लिए खानपान महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है. स्टडी में भी इस बात का ज़िक्र किया गया है कि कौन सा खाना खाना चाहिए और कौन सा नहीं. पीड़ित व्यक्तियों को चॉकलेट, चीज़, आईसक्रीम, कैफीन, रेड वाइन और बीयर से परहेज करना चाहिए.

एक्युपंक्चर : एक्युपंक्चर चीन की पारंपरिक पद्धति है. माइग्रेन पीड़ितों के लिए यह पद्धति काफी कारगर है. इसमें शरीर के किसी एक हिस्से में सुई चुभाई जाती है. छह महीने तक लगातार इलाज से लाभ हो सकता है.

योग : योग के विभिन्न स्तरों, जैसे फीजिकल, मेंटल, इमोशनल और स्प्रिच्युअल तरीक़े दर्द को कम करते हैं. डॉक्टर पीड़ितों को योग करने की सलाह देते हैं.

वैसे माइग्रेन का इलाज निम्न दवाओं से संभव है, लेकिन बिना डॉक्टर के निर्देश के इसका सेवन न करें-

कोइनेजाइम क्वी 10 (सीओक्वी 10) : यह विटामिन बी 2 जैसा ही है. जो बहुत ही लाभकारी है.

मैग्नीशियम : मैग्नीशियम माइग्रेन हमले की आवृति को कम करने के लिए भी जाना जाता है. हालांकि कुछ मामलों में इससे डायरिया और गैस की समस्या हो सकती है.

रिबोफ्लैविन (विटामिन बी2) : बेल्जियम में एक स्टडी में यह पाया गया कि रिबोफ्लैविन (विटामिन बी2) बहुत ही प्रभावी है और सस्ता भी है. यह माइग्रेन पीड़ितों की पहली पसंद है.

5-एचटीपी : हाइड्रोऑक्सीट्राईपटोफैन एक एनीमो एसिड है, जो उसकी तीव्रता और आवृत्ति को कम करता है. स्मोकिंग करने वालों को माइग्रेन होने का ज़्यादा ख़तरा रहता है. एक स्टडी के मुताबिक तंबाकू में सिरदर्द बढ़ाने वाले तत्व मौजूद होते हैं.

अधिक भार खतरे की घंटी

अधिक वजन वाले लोग, जिनकी उम्र 20 से 55 के बीच है, उनमें माइग्रेन की आशंका अधिक होती है. एब्डोमिनल ओबेसिटी की माप कमर से की जाती है. इस तरह बॉडी के कुल ओबेसिटी को भी मापा जाता है. इसकी गणना बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) से की जाती है. यह माप वेट और हाइट से संबंधित है. जिनकी उम्र 20 से 55 है और जिनकी वेस्ट लाइन अधिक है, उनमें माइग्रेन होने की आशंका अधिक रहती है. इसलिए विशेषज्ञ पेट के आसपास जमा फैट को कम करने की सलाह देते हैं.

बिमलेश झा
feedback.chauthiduniya@gmail.com

बिना हिचके ख़ूब खाएं चॉकलेट

चॉकलेट का नाम सुनते ही मुंह में पानी आ जाता है. लोग किसी भी उम्र, वर्ग या हैसियत के हों, चॉकलेट देखते ही मन सबका ललचा जाता है. बच्चे अभिभावक से जिद करके चॉकलेट लेते हैं तो बड़े बच्चों से छिपकर चॉकलेट खाते हैं. इसकी वजह है उसका बेमिसाल स्वाद. यह दूसरी बात है कि इस स्वाद के फेर में लोग बीमारियों को भी न्योत लेते हैं. पर चॉकलेट खाने के सिर्फ़ नुक़सान ही नहीं, कई फ़ायदे भी होते हैं. चॉकलेट का बोटानिकल नाम 'थेयोब्रोमा काकाओ' है. इसका मतलब होता है-भगवान का भोजन. चॉकलेट का आविष्कार 18वीं सदी में हुआ. इसे कोको बीन्स से तैयार किया जाता है. कोको बीन्स में कई तरह के फ्लेवेनॉल और पॉलीफेनॉल होते हैं, जो हाई ब्लडप्रेशर करने वाले और हृदय के लिए लाभप्रद माने जाते हैं. पॉलीफेनॉल के एंटीऑक्सीडेंट्स हमारे शरीर में एजींग की प्रक्रिया को धीमा करते हैं. कोको डार्क चॉकलेट में ज़्यादा मात्रा में होते हैं. यानी चॉकलेट जितने डार्क होंगे, आपके जवान और स्वस्थ रहने के आसार उतने ही अधिक होंगे.

मिल्क चॉकलेट और व्हाइट चॉकलेट की गुणवत्ता भी कम नहीं है. मिल्क चॉकलेट में विटामिन बी-1, बी-2, ई और मैग्नेशियम, फॉस्फोरस, जिंक, कॉपर पाए जाते हैं. मिल्क चॉकलेट के एक रेग्यूलर साइज़ बार लेने से शरीर की रोज़ की 12 प्रतिशत कैल्शियम की ज़रूरत को पूरा किया जा सकता है. साथ ही हर रोज़ के आयरन की कुल आवश्यकताओं में से 12 प्रतिशत की पूर्ति की जा सकती है. नॉटिंघम यूनिवर्सिटी के एक अध्ययन में फरवरी 2007 में बताया गया था कि चॉकलेट खाने से दिमाग़ तेज़ होता है. अधिक मात्रा में कोको निहित चॉकलेट खाने या चॉकलेट ड्रिंक से रक्त का संचार दिमाग़ के एक महत्वपूर्ण हिस्से में बढ़ जाता है. इससे सतर्कता के गुण में बढ़ोतरी होती है. चॉकलेट में लगभग 300 प्राकृतिक कम्पाउंड होते हैं जो दिमाग़ी प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने में मदद करते हैं, जिससे मस्तिष्क पर दबाव कम महसूस होता है. इसलिए तनावग्रस्त होने पर चॉकलेट खाने से राहत महसूस होती है. यह मानव व्यवहार को भी प्रभावित करता है. चॉकलेट में ट्रीप्टोफेन नामक एक रसायन होता है, जो शरीर में सेरोटीन बनाने का काम करता है. सेरोटीन एक न्यूरोकेमिकल है जो ख़ुशी के अहसास को बढ़ाता है. साथ ही मूड को रोमांटिक बनाने के अलावा कामोत्तेजना को भी बढ़ाता है. इन फ़ायदों के लिए चॉकलेट को कमरे के तापमान पर रखकर ही खाएं. साथ ही ध्यान रहे कि ये सारे गुण चबाने वाले, क्रीमी परत इत्यादि वाले चॉकलेट में नहीं पाए जाते हैं. ये सिर्फ़ सॉलिड कोको चॉकलेट में होते हैं. छह साल से चॉकलेट के व्यापार से जुड़ी गीतांजलि बताती हैं कि एक वक़्त था जब देश में उन्होंने डिज़ाइनर चॉकलेट की शुरुआत की थी. तब यह हर किसी के लिए अचंभे की बात थी कि चॉकलेट जैसे बच्चों की चीज़ पर भी काम किया जाने लगा है. पर अब हर तरह के लोग अलग-अलग स्वाद के चॉकलेट मांगते हैं. इनमें रियल बर्जियन फ्लेवर, सॉफ्ट सेंटर, प्रालाइन, लिकर चॉकलेट, बिस्कुट चॉकलेट इत्यादि कई प्रकार के फ्लेवर्स हैं. और तो और, अब तो त्योहारों पर भी मिठाइयों की जगह चॉकलेट का ही इस्तेमाल होने लगा है. बाज़ार में अलग-अलग स्वाद की ख़ासियत वाले विभिन्न ब्रांड्स के चॉकलेट उपलब्ध हैं. इनमें कैडबरी, अमूल, नेसकैफे इत्यादि हैं. चॉकलेट से कई तरह के स्वादिष्ट व्यंजन और ड्रिंक भी बनाए जा सकते हैं. जैसे चॉकलेट शेक, पेस्ट्री , केक , पैनकेक इत्यादि. चॉकलेट के इतने सारे फ़ायदे जानकर कोई भी व्यक्ति सोच सकता है कि चॉकलेट ख़ूब खाएं. पर ज़रा ठहरिए. किसी भी चीज़ की अति हानिकारक होती है. चॉकलेट का अत्यधिक सेवन शरीर में फैट , शुगर , कैलोरी बढ़ाता है और मोटापा और अन्य तरह की परेशानियां देता है. चॉकलेट का सेवन समुचित मात्रा में ही करना चाहिए, ताकि इसे शरीर के लिए लाभप्रद बनाया जा सके. दंत चिकित्सक डॉ. ख़ुशबू बताती हैं कि दांत की तक़लीफ़ से परेशान लोगों के लिए विशेष प्रकार के चॉकलेट बाज़ार में उपलब्ध हो गए हैं. इनके सेवन से दांतों को नुक़सान नहीं पहुंचता है. इसके अलावा डायबिटीज के मरीज़ों के लिए भी शुगर-फ्री चॉकलेट आसानी से बाज़ारों में मिल जाते हैं.

रीतिका सोनाली
feedback.chauthiduniya@gmail.com

देख कर भी सीख सकते हैं हम

सीखना सिर्फ़ स्कूल, कॉलेज या संस्थानों में जाकर ही नहीं होता. आंखें खुली रखें, तो आसपास बहुत कुछ ऐसा होता जिसे देख कर सीखा जा सकता है. ख़ासकर प्रदर्शनियों को. वह प्रदर्शनी चाहे किसी भी विषय पर ही क्यों न हो. इसलिए कि प्रदर्शनियों में तमाम बड़े लोग नई सोच, नए प्रयोग आदि की अभिव्यक्ति करते हैं. जैसे आजकल शादी का मौसम है. इसे ध्यान में रख कर दूल्हा-दुल्हन से लेकर सगे-संबंधी और दोस्तों तक के लिए डिज़ाइनर नए-नए ट्रेंड सेट कर रहे हैं. इस सिलसिले में आजकल प्रदर्शनियां लगने भी शुरू हो गई हैं. फ़ैशन डिज़ाइनिंग से जुड़े लोग इन प्रदर्शनियों में जाकर बहुत कुछ सीख सकते हैं.

एक ऐसी प्रदर्शनी पिछले दिनों दिल्ली में लगी. उसमें नए ट्रेंड की सभी चीज़ें प्रर्दशित की गई थीं. अशोक होटल में लगी इस प्रदर्शनी में इस साल के वेडिंग ट्रेंड सेट करने वाले डिज़ाइनर मनीष अरोड़ा, कविता भारती, वरुण बहल, पायल जैन, सत्या पाल, आशीष पांडे, नैना बलसावर, अहमद शायना, नीता भार्गव, अंजना भार्गव, रत्ना जैन के डिज़ाइनर कलेक्शन का ख़ास योगदान रहा. शादी में दूल्हा और दुल्हन ही आकर्षण का केंद्र होते हैं, इसीलिए डिज़ाइनर्स इनके लिए स्टाइल का ख़ास ध्यान रखते हैं. कोई भी चीज़ पुराने पैटर्न की हो तो उत्साह भी फीका पड़ने लगता है. शादी के कपड़ों इत्यादि से एक भावनात्मक रिश्ता भी जुड़ता है.

ख़ास कर दुल्हन के परिधान में भावनाएं निहित होती हैं, क्योंकि इनसे बाबुल के घर से विदाई का ग़म और पिया-मिलन की ख़ुशी एक साथ जुड़ जाती हैं. इस बार इन डिज़ाइनर्स की ओर से दुल्हन की लहंगा-चोली में हल्के और चटख रंगों का विशेष मेल किया गया है. चोली के चटख रंगों का मेल लहंगे के हल्के रंग के साथ विशेष पैटर्न जैसे दस कली लहंगा, मिड लेंथ लहंगा इत्यादि पर किया गया है. यही नहीं, साड़ियों का फ़ैशन भी कहीं कम नहीं हुआ है, इनमें हाफ सवारी, अलग-अलग कट्स वाली थ्री-पीस साड़ी ख़ास हैं. सलवार-कुर्ती में जहां काफी समय से चूड़ीदार के साथ अनारकली की स्टाइल चल रही थी, वहीं इस बार स्ट्रेट कुर्ती को पाकिस्तानी पायजामी के साथ उतारा गया है. दूल्हे के परिधान में भी शेरवानी के साथ स्ट्रेट पायजामे को धोती स्टाइल में जोधपुरी लुक दिया गया है. रंगों में नारंगी, गुलाबी, गाढ़े हरे रंग ट्रेंड में हैं. इनके अलावा इस प्रदर्शनी में मंदी को ध्यान में रखते हुए सस्ते-महंगे हनीमून पैकेज, बॉलीवुड स्टाइल में शादी की यादगार फोटोग्राफी, ट्रेंडी बैग और फुटवियर, मौकापरस्त परफ्यूम्स और कॉस्मेटिक्स के कई विकल्प भी पेश किए गए.

सलवार-कुर्ती में जहां काफी समय से चूड़ीदार के साथ अनारकली की स्टाइल चल रही थी, वहीं इस बार स्ट्रेट कुर्ती को पाकिस्तानी पायजामी के साथ उतारा गया है. दूल्हे के परिधान में भी शेरवानी के साथ स्ट्रेट पायजामे को धोती स्टाइल में जोधपुरी लुक दिया गया है.

रीतिका सोनाली
feedback.chauthiduniya@gmail.com

नहीं होने देंगे खाद्यान्न संकट : कृषि सचिव

कृषि भवन में उनका कमरा आजकल किसी युद्ध के मैदान जैसा लगता है. मानसून की कमी से जूझ रहे भारत में एक अरब जोड़ी आंखें इस संकट से उबारने की आस लगाए कृषि मंत्रालय की ओर ही लगी हैं. इन सब की ज़िम्मेदारी है कृषि सचिव टी नंद कुमार पर, जो मंत्रालय से लेकर रिज़र्व बैंक और दूसरे मंत्रालयों के बीच भागदौड़ में जुटे हैं. इस बीच मानसून की कमी से जूझते राज्यों के कृषि सचिवों के साथ वीडियो कांफ्रेंसिंग भी चल रही है. कृषि सचिव कहते हैं कि हम राज्य और केंद्र दोनों स्तरों पर संपर्क बनाए हुए हैं, ताकि कम बारिश होने पर ऐसे हालात से निपटने की योजनाएं तैयार रहें. वह अपनी योजनाओं के साथ मुस्तैद हैं और उनके पास प्लान बी, सी और डी भी तैयार हैं. अगर बारिश का स्तर उम्मीद से कम रहा तो ये योजनाएं तेज़ी से लागू हो जाएंगी.

भारतीय प्रशासनिक सेवा के 1972 बैच के झारखंड काडर के अधिकारी नंद कुमार घबराहट की स्थिति से इंकार करते हैं. हालांकि वह मानते हैं कि बारिश की कमी से कुछ समस्याएं ज़रूर पैदा होंगी. उनके आत्मविश्वास से पता चलता है कि भारतीय वस्त्र नीति की रूपरेखा तय करने वाले इस प्रशासक ने आपात स्थिति में सभी ज़रूरी योजनाएं लागू करने की तैयारी वाकई कर ली है. भौतिकी में स्नातक नंद कुमार के पास कृषि और खाद्य से लेकर शहरी विकास, वस्त्र, खान, वाणिज्य और उद्योग जैसे क्षेत्रों का विस्तृत अनुभव है. वह अंतरराष्ट्रीय जूट अध्ययन समूह के महासचिव भी हैं. अंजुम ए ज़ैदी से अपनी बातचीत में उन्होंने कई महत्वपूर्ण पहलुओं पर की चर्चा-

देश भर में मानसून के स्तर के कम रहने को लेकर आशंकाओं और डर का माहौल है. आपका मंत्रालय इस ख़तरे को कैसे देख रहा है और क्या योजनाएं बना रहा है?

हां, इस साल मानसून में देरी हो रही है और इस समय मानसून सामान्य से कमज़ोर भी है. सामान्यत: 20 जुलाई तक अधिकतर रोपाई हो जाती है, इसलिए हमारे पास अभी भी क़रीब एक हफ़्ते का समय है. लेकिन उस समय तक भी अगर मानसून पूरा ज़ोर नहीं पकड़ पाता है तो हमें एक बैकअप प्लान लाना ही होगा. हमने यह प्लान पहले से तैयार कर लिया है. हमारा प्लान-बी अलग-अलग समय सीमाओं पर आधारित है और हम 20 जुलाई, 31 जुलाई और 15 अगस्त को मानसून के स्तर के हिसाब से उपाय तय करेंगे. हम स्थिति पर नज़र रखे हुए हैं और एक ऐसी योजना तैयार कर रहे हैं जो राज्यवार और क्षेत्रवार स्थितियों पर आधारित होगी.

आमतौर पर मानसून के देर से आने पर कुछ ऐसा होता है कि सोयाबीन की जगह सूरजमुखी या धान की जगह दाल बो दी जाती हैं. हालांकि हमारी कोशिश होगी कि ज़मीन के हर टुकड़े पर कुछ न कुछ उगाया जाए.

हम दूसरे स्तरों पर भी नज़र रख रहे हैं, अगर किसी जिले में बिल्कुल बारिश न हो तो बड़े पैमाने पर किसान बेरोज़गार होंगे. यह किसी एयरलाइन के कर्मचारियों को छह महीने तक वेतन न मिलने जैसा होगा. हमें उन्हें भी राहत पहुंचानी होगी.

देश का खाद्य सुरक्षा स्तर (फूड सिक्योरिटी लेवल) कैसा है?

पिछले साल और इस साल हमने बड़ी मात्रा में ख़रीद की थी, ऐसे में हम खाद्यान्न भंडार के मामले में अच्छी स्थिति में हैं और खाद्य सुरक्षा स्तर के मामले में हम पर कोई दबाव नहीं है. दरअसल देश के खाद्यान्नों को जमा करने और उनका निर्यात न करने का मंत्रालय का फ़ैसला बहुत समझदारी भरा साबित हुआ है. मानसून की देरी की स्थिति में यह हमारे लिए बड़े काम का होगा.

मानसून के अलावा आपके मंत्रालय का ध्यान किन बातों पर है?

हमें खाद्य सुरक्षा की स्थिरता क़ायम करने के लिए खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी की गति को जनसंख्या और आय की गति के साथ बनाए रखना होगा. सामान्यत: आय के स्तर के बढ़ने से पोषक खाद्य पदार्थ जैसे फलों, दानों, डेयरी और मांसाहार की मांग में बढ़ोतरी होती है. इतना तय है कि कम आय वर्ग में खाद्यान्नों की मांग में बढ़ोतरी जारी रहेगी. इस तरह दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए हमें खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करनी होगी.

हमें चार फ़ीसदी की दर से बढ़ना है. यह भी सच्चाई है कि हम केवल खाद्यान्न क्षेत्र में ही चार फ़ीसदी की दर से आगे नहीं बढ़ सकते. इसके लिए हमें डेयरी, मछली, सब्ज़ियों, पशुपालन और दूसरे क्षेत्रों पर भी ध्यान देना होगा. यह पोषण की दृष्टि से भी ज़रूरी है. जब लोगों को ज़रूरी मात्रा में खाद्यान्न मिल रहे होते हैं तो वे दूसरे पोषक पदार्थों जैसे अंडे, सब्ज़ी, फल की मांग करते हैं. इसलिए इन पदार्थों के उत्पादन को भी जनसंख्या के हिसाब से तय करना होगा और यह मंत्रालय का मुख्य लक्ष्य भी है.

हम इस लक्ष्य तक कैसे पहुंचेंगे?

हमें अपने जल-स्रोतों के प्रबंधन (वाटर रिसोर्स मैनेजमेंट) को और बेहतर करना होगा. मेरे विचार से यह आने वाले समय की सबसे बड़ी चुनौती होगी. दरअसल पानी आने वाले समय में कृषि-उत्पादन को प्रभावित करने वाला सबसे बड़ा फैक्टर होगा.

भारत में बीज-प्रतिस्थापन (सीड-रिप्लेसमेंट) की कमी की पुरानी समस्या रही है. हमारा लक्ष्य इसे हर साल 33 फ़ीसदी के स्तर पर पहुंचाने का है और इसकी प्राप्ति के लिए हमने तीन सालों की समयसीमा तय की है. हालांकि हम इस लक्ष्य के नज़दीक भी नहीं हैं, और इसके लिए हमें कई क्षेत्रों में निवेश करना होगा-बीज उत्पादन (प्रोडक्शन), बीज भंडारण (स्टोरेज), और बीज प्रबंधन (मैनेजमेंट). इनके अलावा हमें अपने बीज भंडारों को आपातकालीन योजना के तौर पर सुरक्षित रखना होगा. यह हमने उन वर्षों के अनुभव से सीखा है, जब मानसून में देरी हुई थी.

बीज विकास और नई क़िस्मों पर आपके क्या विचार हैं?

कई संकर (हाईब्रिड) आए हैं, कई और आ रहे हैं. लेकिन यह तरीक़ा क्षेत्र विशेष पर आधारित होना चाहिए, क्योंकि भारत में जो चीज़ उत्तर प्रदेश में काम करे वह ज़रूरी नहीं कि तमिलनाडु में भी सफल हो.

हम इस तरह के संकर बीज ला रहे हैं, लेकिन कई बार किसान इन्हें कुछ कारणों से पसंद नहीं करते. उदाहरण के लिए किसी बीज का उत्पादन बढ़िया हो सकता है लेकिन शायद स्वाद और गंध अलग हो, जिस वजह से किसान उसे पसंद नहीं करेंगे, यह बात हाईब्रिड बनाते समय नहीं समझी जा सकती. इन सबके बावजूद यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है और हम इसे छोड़ नहीं सकते.

कृषि मुख्यत: पानी से जुड़ी चीज़ है, जल-प्रबंधन पर आपके क्या विचार हैं?

हम जल-संसाधन मंत्रालय और ग्रामीण विकास मंत्रालय के साथ काम कर रहे हैं. यही वे दो विभाग या मंत्रालय हैं जिनके पास जल-स्रोतों के प्रबंधन के लायक संसाधन हैं. हम अभी जिस विचार पर काम कर रहे हैं, वह जल संरक्षण के कारगर तरीक़ों और जल के सार्थक उपयोग का है. इसलिए माइक्रो-इरीगेशन इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाता है. हम इसका समर्थन कर रहे हैं और नरेगा से अनुरोध कर रहे हैं कि वे छोटे जलाशयों का संरक्षण करें और नए जलाशय बनाएं. वहीं भू-संसाधन मंत्रालय वाटरशेड प्रबंधन का कार्यक्रम चलाएगा. हमारा विचार इन सभी प्रयासों को एक साथ जिला स्तर पर जोड़ने का है.

कहा जाता है कि भारत में मुख्य समस्या मात्रा (क्वांटिटी) की नहीं गुणवत्ता (क्वालिटी) की है. क्या आप ऑरगैनिक फार्मिंग का भविष्य भारत में देखते हैं?

ऑरगैनिक फार्मिंग की मांग तो है, लेकिन दुर्भाग्य से घरेलू बाज़ार में इस तरह की खेती और उपज के लिए सही क़ीमत नहीं मिल पाती है. इसीलिए ऑरगैनिक फार्मिंग का विकास धीमा रहा है. यह विकास बाहरी बाज़ार में निर्यात के दम पर हुआ है. ऑरगैनिक फार्मिंग आसान भी नहीं है, क्योंकि पुराने तरीक़े से ऑरगैनिक फार्मिंग में जाने में समय लगता है. दूसरे ऑरगैनिक फार्मिंग का आकर्षण बढ़ाने के लिए क़ीमतों में अंतर को उसी अनुपात में होना होगा.

निर्यात के लिए हम इसे ज़रूर आगे बढ़ा रहे हैं. हालांकि सर्टिफाइड ऑरगैनिक फार्मिंग जैसे कुछ मुद्दे हैं. मंत्रालय की नीति के तहत हम कैमिकल खादों, कीटनाशकों के प्रयोग और खपत को घटाने की कोशिश कर रहे हैं और बायो-फर्टिलाइज़र्स या खेतों में मिलने वाले जैविक कूड़े का उपयोग बढ़ाने में लगे हैं. हमारा उद्देश्य खेतों से कैमिकलों के दबाव को कम करने का है.

फूड-प्रोसेसिंग पर

इस बजट में इस क्षेत्र में बहुत बड़ा अवसर दिया गया है, पूरा टैक्स हटाने से बड़े पैमाने पर निवेश हो सकता है.

अंजुम ए ज़ैदी
feedback.chauthiduniya@gmail.com

राशिफल

(20 जुलाई से 26 जुलाई तक)

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)
इस सप्ताह आपको मनोरंजन के सुखद अवसर प्राप्त होंगे. आपने जिस मूल्यवान वस्तु की कामना की थी, वह मिल जाएगी. दांपत्य जीवन मधुर रहेगा. पिता से वैचारिक मतभेद होने की आशंका बनी हुई है. सहयोगियों से तनाव मिल सकता है. इसलिए कार्यस्थल पर व्यवहार में सतर्क रहने की आवश्यकता है.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)
समाज में प्रतिष्ठा बढ़ेगी. लेकिन इसे बनाए रखना आपके लिए चुनौती होगी. इसलिए कुछ ऐसा कार्य न करें, जिसके कारण आपको अपयश का सामना करना पड़े. जीवनसाथी से भरपूर सहयोग प्राप्त होगा. दूसरे के कार्यों में दखल देने से बचें, नहीं तो आपको कष्ट हो सकता है.

मिथुन (21 मई से 20 जून)
स्वास्थ्य को लेकर ज़्यादा सावधानी बरतनी की ज़रूरत है. पाचन संबंधी शिकायतें हो सकती हैं, इसलिए अधिक मात्रा में भोजन से बचें. अपने दुश्मनों के कारण आपको तनाव मिल सकता है. व्यावसायिक मामलों में कुछ नया करने से पहले सोच विचार कर ही निर्णय लें.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)
इस सप्ताह मांगलिक कार्यों के लिए किया जा रहा प्रयास सफल रहेगा. परिवार वालों का भरपूर सहयोग मिलेगा. ख़ुशी की बात है कि आपको मकान, संपत्ति, वाहन और भौतिक वस्तुओं से लाभ मिलने की आशा है. साथ ही, कहीं लंबी यात्रा पर भी जा सकते हैं.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)
आपको शिक्षा, प्रतियोगिता में सफलता मिलने की संभावना है. घर के कामों में अधिक व्यस्त रह सकते हैं. पारिवारिक सुख प्राप्त होगा. दुश्मन परास्त हो जाएंगे. इस सप्ताह चारों ओर से आपको ख़ुशियां ही ख़ुशियां मिलने वाली है. इसलिए जीवन में आनंद मनाइए.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)
प्रतियोगी परीक्षा के लिए तैयारी कर रहे हैं, तो उसमें सफलता मिल सकती है. समाज के लिए कुछ करने की योजना बना सकते हैं. किसी भी काम में कुछ परिवर्तन करने की सोच रहे हैं, तो उसमें भी सफलता मिलेगी. निजी संबंधों में मज़बूती आएगी.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्तूबर)
सफलताओं का समय है. परिवार के किसी बुज़ुर्ग से आर्थिक सहयोग मिल सकता है, लेकिन अपनी वाणी पर मधुरता बनाए रखें. आत्मविश्वास में वृद्धि होगी. अगर आप खाद्यान्न वस्तुओं और दवा के क्षेत्र में व्यवसाय करना चाहते हैं, तो उसमें अपार सफलता प्राप्त होगी.

वृश्चिक (21 अक्तूबर से 20 नवंबर)
आपको अचानक लाभ प्राप्त हो सकता है. पहले से चल रहे काम इस सप्ताह पूरे हो जाएंगे, लेकिन अधिक मेहनत की ज़रूरत है. विवाह से संबंधित प्रयास रंग ला सकते हैं. वैसे आपको आंखों से संबंधित समस्याएं हो सकती हैं. इसलिए समय रहते डॉक्टर के पास ज़रूर जाएं. आलस्य नुक़सानदेह हो सकता है.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)
इस सप्ताह आपको अनचाहे काम भी करने पड़ सकते हैं. विरोधी आपके कामों में दखल देंगे, इसलिए किसी भी प्रकार का कोई ख़तरा मोल न लें. नौकरी के क्षेत्र में यात्रा का योग बना हुआ है. साथ ही संतान के दायित्व की पूर्ति भी होगी.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)
लेन-देन के मामलों में विवाद की आशंका बनी हुई है. बेकार के कामों में अपना समय बर्बाद न करें. ऐसा करना आपके लिए हानिकारक साबित होगा. आपको सम्मान के अवसर भी प्राप्त होंगे. अगर रचनात्मक काम करेंगे तो उसमें सफलता ज़रूर मिलेगी.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)
आप सामाजिक कामों में व्यस्त रहेंगे. कुछ नया करने जा रहे हैं तो उस पर किसी से विचार करके ही निर्णय लें. शासन-सत्ता का सहयोग मिलने की आशा है. आप अगर राजनीतिक दिशा में प्रयास करेंगे तो सोचें नहीं करें, क्योंकि उसमें सफलता तय है.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)
धन, पद, प्रतिष्ठा व सम्मान के लिहाज़ से यह सप्ताह अति उत्तम है. इस सप्ताह हर क्षेत्र से सराहना मिलेगी. निजी कार्यों में बहुत व्यस्त रहेंगे. घर में बड़ों से सहयोग प्राप्त होगा. वैसे कोई गुप्त रूप से आपके ख़िलाफ़ सक्रिय रह सकता है, जिससे तनाव हो सकता है.

टुकड़ों में महत्वाकांक्षा

अनंत विजय

सिद्धार्थ धनवंत सांघवी के पहले उपन्यास *द लास्ट सांग ऑफ डस्क*– को लंदन के *बेरी ट्रॉस्क अवॉर्ड* समेत कई अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार मिले. उनके दूसरे उपन्यास *द लॉस्ट फ्लेमिंगोस ऑफ बांबे* को *मैन एशियन लिटरेरी प्राइज* के लिए शॉर्टलिस्ट किया गया. ये बातें लेखक परिचय और किताब के बैक कवर पर प्रमुखता से प्रकाशित हैं. इसीलिए जब मैंने इसे पढ़ना शुरू किया तो मेरी अपेक्षाएं सातवें आसमान पर थीं. लेखक ने उपन्यास की शुरुआत में एक बेहद संक्षिप्त नोट लिखा है, जिसमें यह स्वीकार किया गया है कि उनका उपन्यास पूर्व में घटी ऐसी घटनाओं से प्रेरित है जिसकी प्रिंट मीडिया, टीवी और फिल्मों में ख़ास चर्चा हुई है. उपन्यास के नाम से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि यह पक्षियों या वाइल्ड लाइफ पर केंद्रित है. फ्लेमिंगो तो बस एक प्रतीक है, जिसके बहाने लेखक उपन्यास के नायक की नियति को चित्रित करता है.

उपन्यास शुरू होता है करन सेठ नाम के फोटोग्राफर की कहानी से, जो शिमला से दिल्ली होते हुए मुंबई पहुंचता है. करन की दिली तमन्ना है कि वह मुंबई शहर को फोटोग्राफी के माध्यम से फिर से उद्‌घाटित करे. अपनी इस ख्वाहिश को हक़ीक़त में बदलने के लिए वह मायानगरी पहुंचता है और एक अख़बार में नौकरी कर लेता है. पहले ही असाइनमेंट पर अख़बार का संपादक उसे मशहूर, लेकिन सनकी पियानो वादक समर अरोड़ा के फोटोग्राफ्स लेने भेजता है. समर अरोड़ा 25 साल की उम्र में ही सफलता के शिखर पर होता है. एक रेस्तरां में वह फोटो लेने में कामयाब तो हो जाता है, लेकिन फोटो की क्वालिटी अच्छी नहीं होती और इसी वजह से वह फिर समर के घर जाता है. इस दौरान समर से उसकी नज़दीकी बढ़ जाती है और वहीं मशहूर फिल्म अदाकारा जायरा से उसकी मुलाक़ात होती है, जो बाद में दोस्ती में बदल जाती है. जायरा बला की ख़ूबसूरत है और वह समर पर फिदा भी है, लेकिन समर तो अपने अमेरिकी लेखक दोस्त लियो के साथ समलैंगिक संबंध में डूबा है. समलैंगिक संबंधों की एक अलग ही कहानी इस उपन्यास में चलती है. समर से उपेक्षा झेल रही जायरा धीरे–धीरे करन के क़रीब आती है और उससे अपना दुख साझा करती है .

लेकिन इस कहानी के समांतर एक और कहानी चल रही होती है. यह कहानी है एक धनी उद्योगपति की जवान और ख़ूबसूरत पत्नी रेहान और फोटोग्राफर करन के बीच चल रहे प्रेम की. बांबे फॉर्निकेटर की तलाश में जब करन मुंबई के चोर बाज़ार में भटक रहा होता है तो उसकी मुलाक़ात रेहा दलाल से होती है, दोनों के बीच बिल्कुल फिल्मी अंदाज़ में प्यार हो जाता है. रेहा दलाल एक कलाकार है, जो उद्योगपति अदि से शादी करने के बाद अपने करियर को तिलांजलि दे देती है. कुछ ही दिनों के बाद दोनों का दांपत्य जीवन नीरस हो जाता है. अपने व्यवसाय की ख़ातिर अदि महीने में पंद्रह दिन विदेश में रहता है. तमाम कोशिशों के बाद जब रेहा दलाल मां नहीं बन पाती है तो फिर से अपने को अपनी कलात्मक रुचियों में व्यस्त रखने की कोशिश करती है. अदि ने उसके लिए घर में ही स्टूडियो बनवा रखा है जहां वह पॉटरी और दूसरे अन्य शौक़ पूरा कर अपना समय गुज़ारती है. इस बीच उसकी दोस्ती करन से बढ़ती जाती है और उसकी दुनिया भी बदलने लगती है. कह सकते हैं कि दोनों के बीच कुछ समय के लिए प्रेम पनप जाता है. हालांकि इस प्यार या प्रेम की शुरुआत जिस्मानी रिश्ते बनने के बाद होती है. एक दिन दोपहर को वह करन को अपने घर ले आती है और उसे अपना स्टूडियो दिखाती है. जब वे दोनों स्टूडियो देखकर उतर रहे होते हैं, तो बेहद फिल्मी अंदाज़ में रेहा दलाल का पांव फिसलता है और वह करन के ऊपर गिरती है. फिर दोनों अपने पर क़ाबू नहीं रख पाते हैं और वहीं ज़मीन पर एक–दूसरे में डूब जाते हैं. लेखक ने इसका वर्णन बेहद सूक्ष्मता से किया है और जिस तरह की भाषा और स्थितियों का जिक्र है, वैसा तो वात्सयायन के कामसूत्र में मिलता है. दोनों के बीच प्यार की पींगें बढ़ती जाती हैं.

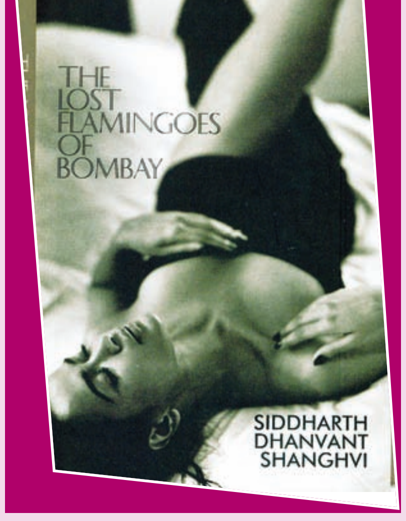

लेकिन इस बीच एक और घटना घटती है. एक मंत्री का बेटा अदाकारा जायरा का क़त्ल कर देता है. दरअसल जायरा एक पब में शराब परोस रही होती है. मंत्री का बेटा वहां पहुंचता है और जायरा से शराब की मांग करता है. जायरा के मना करने पर वह उसके सिर में गोली मार कर फरार हो जाता है. पब की मालकिन मां–बेटी होती है और समर भी पब में ही मौजूद होता है. इसके पहले भी मंत्री प्रसाद का बेटा जायरा के पीछे पड़ा रहता है और उसके सेट पर जाकर भी हंगामा कर चुका होता है. क़त्ल के वक़्त की स्थितियों और गवाहों के बदलने और डबल गन थ्योरी से यह बात साफ हो जाती है कि लेखक ने इस घटना को जेसिका लाल मर्डर से उठाया है और पात्रों के नाम मामूली हेरफेर के साथ बदल दिए हैं. जब जायरा मर्डर केस की सुनवाई अदालत में चल रही होती है तो समर और करन एक–दूसरे के बेहद क़रीब आ जाते हैं. एक दिन ख़बर आती है कि रेहा दलाल गर्भवती हो गई है. उपन्यास में कहीं भी यह साफ नहीं है कि यह बच्चा करन का है या फिर अदि का, लेकिन संकेत साफ है. करन इस वक़्त तक रेहा दलाल को लेकर बेहद पजेसिव हो चुका होता है और एक दिन मंदिर में दोनों के बीच जमकर कहासुनी भी होती है, जिसके बाद रेहा दलाल उसे मिलने से मना कर देती है. जायरा मर्डर केस की सुनवाई जारी रहती है, गवाह पलटते जाते हैं, समर की भी गवाही होती है और वह इस बात पर डटा रहता है कि मुजरिम को सज़ा दिलाकर रहेगा. जब यह मर्डर केस चल रहा होता है, तो समर का समलैंगिक दोस्त लियो अमेरिका नहीं जाने का फ़ैसला लेता है और समर के साथ ही रहता है. अचानक एक दिन पता चलता है कि लियो को एड्स हो गया है और अपने इलाज के सिलसिले में समर के साथ वह अमेरिका चला जाता है. ये सारी घटनाएं आपस में गड्ड–मड्ड होती रहती हैं.

छोटे शहर की मानसिकता वाला युवक करन तब तक रेहा के प्रेम में पागल हो चुका होता है, एक दिन ऐसा आता है कि वह रेहा के पति अदि की मौजूदगी में उसके घर पहुंच जाता है. रेहा उसे चले जाने को कहती है लेकिन वह नहीं मानता और फिर अदि के हाथों उसकी जमकर पिटाई होती है. अपने पैरों पर चलकर प्रेमिका के घर पहुंचा प्रेमी एंबुलेंस पर लौटता है और अस्पताल में भर्ती होता है. इसके बाद उसका दिल टूट जाता है और वह शिक्षक बनकर लंदन चला जाता है. इधर रेहा दलाल को लड़का पैदा होता है, लेकिन अस्पताल में एक नाटकीय हादसे में नवजात की मौत हो जाती है. रेहा का पति इस सदमे को बर्दास्त नहीं कर पाता है और गहरे अवसाद में डिप्रेसन में चला जाता है और कालांतर में लापता हो जाता है. रेहा की तमाम कोशिशों के बावजूद वह नहीं मिल पाता है.

घटनाएं तेजी से बदलती जाती हैं. समर के सहजीवी लियो की अमेरिका में मौत हो जाती है और ग़म में डूबा समर इतना लापरवाह हो जाता है कि उसको अपनी फ़िक्र तक नहीं होती और अनेक बीमारियों से घिर जाता है. उधर करन को लंदन में फिर एक विवाहित महिला मिलती है जो करन के साथ शारीरिक संबध बनाती है. रिश्ते सिर्फ़ और सिर्फ़ जिस्मानी हैं, भावना कहीं बीच में नहीं आती. इस बहाने लेखक ने भारत और ब्रिटेन में संबंधों को दिखाया है. मुंबई में रेहा दलाल भी करन से संबंध बनाती है लेकिन अपने पति और पड़ोसी से छिपाती है, लेकिन वहीं लंदन में करन की दोस्त बनी क्लैरी बिंदास तरीक़े से उसे न केवल अपने मां–बाप से मिलवाती है बल्कि संबंध को भी छुपाती नहीं है. यहां भी लेखक ने लवमेकिंग के वक़्त बेहद घटिया भाषा का इस्तेमाल किया है. बदले हुए घटनाक्रम में करन और समर विदेश से फिर मुंबई आ जाते हैं. दोनों में फिर मुलाक़ात होती है. लेकिन बीमार समर बच नहीं पाता है और एक दिन उसकी मौत हो जाती है. एक बार फिर बेहद नाटकीय अंदाज़ में रेहा दलाल और करन की मुलाकात होती है और वे फिर से शिवड़ी में फ्लेमिंगो देखने को चल पड़ते हैं. तमाम गिले–शिकवे होते हैं. यहां भी करन यह जानने की कोशिश करता है कि रेहा किससे गर्भवती होती है लेकिन रेहा उसे यह नहीं बताती. लेकिन शिवड़ी के रास्ते में मुंबई की बारिश और उसके बाद जमा पानी रास्ता रोक लेता है और फिर दोनों अलग हो जाते हैं. सिद्धार्थ का यह उपन्यास एक ऐसे अंग्रेजीदां उच्चवर्गीय समाज की दास्तां है जहां महंगी शराब पी जाती है, समलैंगिक संबंध बनाए जाते हैं, जहां अमेरिकी अंग्रेजी की तरह हिंदी बोली जाती है, स्त्री–पुरुष के संबंध में खुलापन होता है, कोई टैबू नहीं होता.

लेकिन अगर हम इस उपन्यास की भाषा पर ग़ौर करें तो तो कई जगह पर तो यह बेहद मनोरंजक और कई जगह पर घटिया है. लेखक जब जायरा की ख़ूबसूरती की बात करता है तो कहता है कि इसकी ख़ूबसूरती ने देश के हस्तमैथुन इंडेक्स में अभूतपूर्व बढ़ोतरी की है. लेकिन जिस तरह सेक्स बच्चों का खेल नहीं है, उसी तरह से सेक्स पर लिखना भी हर किसी के बूते की बात नहीं. इसलिए जब भी सिद्धार्थ सेक्स या लवमेकिंग पर लिखते हैं तो उनकी भाषा बेहद चलताऊ और घटिया हो जाती है, चाहे वह रेहा और करन के बारे में लिखा गया हो या फिर करन और क्लैरी के बारे में. दोनों जगह वह स्तरीयता बरकरार रखने में बुरी तरह विफल रहे हैं और भाषा एकदम फूहड़ हो गई है. सिद्धार्थ सांघवी के इस उपन्यास का फोकस उस समाज के यथार्थ को सामने लाने की कोशिश है जिसके बारे में ज़बानी तो ख़ूब चर्चा होती है लेकिन लिखा ज़रा कम ही जाता है. लेखक ने अपने इस उपन्यास में घटनाओं और कहानियों का ऐसा कोलाज तैयार किया है जिसमें प्यार है, सेक्स है, समलैंगिक रिश्ते हैं, नेता– पुलिस गठजोड़ का घिनौना चेहरा है, सिद्धांतहीनता है, आसमान छूती महात्वाकांक्षा और उसे पाने की हड़बड़ी है, रिश्तों का फूहड़पन है. नहीं है तो वह एक सूत्र, जो इस कोलाज को बांध सके. इस एक सूत्र के अभाव में कई टुकड़ों में बंटा यह उपन्यास उदारीकरण के बाद के भारत के महानगरों की तस्वीर को सामने लाने की नाकाम कोशिश होकर रह जाता है.

(लेखक आईबीएन7 से जुड़े हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

ऊं में है अनंत

व्यालोक

सनातन धर्म का सबसे पवित्र और अहम अक्षर ऊं माना जाता है. यह पहली बार वैदिक परंपरा में उल्लिखित हुआ था. यह शब्द संस्कृत के तीन अक्षरों अ, इ और म को संयुक्त कर बना है. इसे कई बार उद्‌गीथ या प्रणव मंत्र (मूल या पुरातन) भी कहा जाता है. ऐसा इस वजह से भी कहा जाता है कि न केवल यह मूल ध्वनि है, बल्कि अधिकतर मंत्र भी इससे ही शुरू होते हैं. कहानी तो यह भी है कि ऊं की उत्पत्ति शिव के डमरू से हुई थी और इसी वजह से इसे इतना अधिक महत्व और पवित्र माना जाता है. इसे उसी तरह समझ सकते हैं, जैसे मुसलमानों के लिए 786 पवित्र माना जाता है.

सनातन धर्म की किसी भी पूजा या संस्कार में ऊं का उच्चारण सबसे अधिक होता है. यह संस्कृत का शब्द है, जिसे देवभाषा भी कहते हैं. इसका महत्व इसी से समझ सकते हैं कि यह शब्द किसी भी मंत्र के पहले उच्चारित होता है, ताकि हम परमात्मा को याद कर सकें, उसका धन्यवाद दे सकें और यह बता सकें कि हम उसे याद रखते हैं. सनातन धर्म का यह प्रतीक पूरे ब्रह्मांड का भी सूचक है.

ऊं को पूर्ण व्यापक ब्राह्मण की अभिव्यक्ति के तौर पर देखा जाता है. ब्राह्मण का अर्थ सदा फैलने वाला, सतत परिवर्तनशील और सतत गतिशील होता है. बृह का अर्थ व्यापकता से है. लगातार विस्तार जिसका स्वभाव है, वही ब्राह्मण है, वही परमतत्व है. इसी ब्राह्मण की अभिव्यक्ति ऊं में हुई है. ज़ाहिर तौर पर पूरा ब्रह्मांड ही ऊं शब्द के तरंगों से भरा है. ऊं को वैसे तो संस्कृत का शब्द माना जाता है, लेकिन यह ब्राह्मी का भी तत्व ख़ुद में समाहित किए हुए है. अनुस्वार की ध्वनि ही इसे आनुनासिक बनाती है.

कई बार देवी–देवताओं को भी ओंकार के स्वरूप से समाहित किया जाता है. इसका मतलब बस यही है कि जो भी अप्रत्याशित और विस्तारित है, जो भी असीम है, वह दरअसल ब्रह्मांड की पूर्ण अभिव्यक्ति है. इसी तरह देवी और देवता भी अपने स्वरूप में पूर्ण विस्तारित और पूरी तरह से अव्याख्येय हैं. एक ओंकार तो, सिख धर्म का मूल तत्व ही है. सनातन धर्म के दर्शन में यह माना जाता है कि ब्राह्मण के साकार रूप का नाम और शरीर होता है और ब्रह्मांड की व्याख्या के सबसे निकट ऊं ही माना जाता है. इसकी वजह यह मानी जाती है कि हरेक तत्व ही तरंगों से बना हुआ है. सत्य को तरंगों या लयात्मक ध्वनियों के रूप में सनातन धर्म में परिभाषित किया गया है, जिसे हम क्वांटम फिज़िक्स और सुपर स्ट्रिंग थियरी में भी देख सकते हैं, जिसमें पूरे विश्व को ही तरंगित ध्वनियों के रूप में परिभाषित किया जाता है.

अद्वैत दर्शन में कई बार ऊं को तीन तत्वों का संगम बताया गया है. यह बताता है कि हमारा वर्तमान स्वरूप मिथ्या या थोड़ा कम अहम सच है. दूसरे, पूर्ण सत्य को, परम तत्व को जानने के लिए हमें शरीर और बुद्धि (मानस) से आगे निकलकर अनंत की सही प्रवृत्ति को समझना होगा. अंततः, हमें उस पवित्र भाव और स्थल को समझना होगा जो अपरिहार्य और परमावश्यक है, पर सभी तरह के द्वैत का अतिक्रमण कर जाता है, होने या न होने के परे चला जाता है और जिसे शब्दों में नहीं बताया जा सकता. जो अवर्णनीय और अव्याख्येय है. इस अधिभौतिक प्रतीक में तीन तत्वों को नीचे वाले कोण, ऊपर के कोण और बाहर निकली पूंछ से पहचाना जाता है. यही ऊं है, तीन प्रतीकों, तीन चिह्नों वाला, जो आख़िरकार उस एक परमतत्व में मिल जाता है. अंतिम तौर पर यही कहा जा सकता है कि मोक्ष, मुक्ति, समाधि या निर्वाण के लिए ज़रूरी है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व को जाने. उसे समझे और यह जाने कि उसे आख़िरकार क्या बनना है. अंत में, यह बता दिया जाए कि जब किसी को सच्चा ज्ञान मिल जाता है, तो जानने वाले और जाने हुए के बीच कोई अंतर नहीं रहता. व्यक्ति ख़ुद ही चेतना बन जाता है. यानी, ऊं हमें बताता है कि परम सत्य तो यही है कि सब एक ही हैं.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

मुसलमान

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि पैसे की ज़रूरत पड़ जाने से इक़बाल फिर ग़लत रास्ते पर चल पड़ा. अब आगे पढ़िए...

घिरते बादलों के पीछे से चंद्रमा कुछ मिनटों के लिए दिखाई दिया और फिर छिप गया. मंद–मंद बहता पवन गति पकड़ रहा था. पानी को चीरती लांच आगे बढ़ रही थी. लाइट हाउस क़रीब आया. उससे दूर खड़े एक जहाज़ की धुंधली आकृति स्पष्ट होने लगी. इक़बाल फैली आंखें से देखता रहा.

अब तक उसने इतना समझ लिया था : पानी की डिलीवरी लेने के लिए वे बारापानी जा रहे थे. (जैसे शराब के लिए पानी शब्द इस्तेमाल किया जाता है, उसी तरह जो जहाज़ घाट पर लंगर नहीं डालते या स्थान के अभाव में घाट से दूर लंगर डालते हैं, उस स्थान को बारापानी कहा जाता है.)

ठीक एक घंटे के सफ़र के बाद स्टीम लांच विशालकाय शिप के बिलकुल क़रीब आकर खड़ी हुई. शिप हांगकांग की थी. उसका चीनी कैप्टन संपर्क की राह देखता डेक पर खड़ा था. मुलाक़ात का समय निश्चित था.

यह समय किसने तय किया? कहां तय हुआ होगा? ये प्रश्न इक़बाल के लिए अनुत्तरित थे. अभी इस धंधे में उसे बहुत सीखना था, बहुत जानना था. कॉलेज में नहीं, वह अंडरवर्ल्ड में डिग्री प्राप्त करने वाला था.

शिप में से डोरियों की सीढ़ी फेंकी जाने पर रशीद ने इक़बाल के हाथ में दस रुपये के आधे नोट का टुकड़ा रखा, फिर कहा, कैप्टन को यह टुकड़ा देकर कहना कि माल तैयार रखें. रात में एक बजे डिलीवरी के लिए हम वापस आएंगे.

इक़बाल ने नोट का टुकड़ा जेब में रखा और हाथ बढ़ाकर रस्सी की सीढ़ी पर पकड़ जमाई. संभलकर वह लगभग दोमंज़िले जितना अंतर चढ़कर डेक तक आया. चीनी कैप्टन ने उसे हाथ दिया. इक़बाल एक पांव मुंडेर पर रखकर शिप में कूद पड़ा.

जहाज़ काफी बड़ा था, मालवाहक था. तीनेक ख़लासी भी डेक पर दिखाई पड़ रहे थे. वे सब कैप्टन के जातभाई यानी कि चीनी ही थे.

इक़बाल ने जेब से नोट का टुकड़ा निकालकर कैप्टन के सामने बढ़ाया. कैप्टन ने पॉकिट खोला. उसमें संभालकर रखे उसी नोट के दूसरे टुकड़े को निकाला और दोनों टुकड़ों को मिलाकर देखा. उसे तसल्ली हो गई, दोनों टुकड़े बीच में से फाड़े गए एक ही नोट के दो भाग थे.

उसने इक़बाल की ओर देखकर मुस्कान बिखेरी. इक़बाल ने उसे रशीद का संदेश भी दिया, वी विल बी बैक बाइ वन ए एम. ओके फॉर यू?

उसने हां में सिर हिलाया.

इक़बाल फिर शिप की मुंडेर पर चढ़ गया. रस्सी की सीढ़ी से नीचे जाते समय उसके मन में कुछ प्रश्न उठे. दस रुपये के भारतीय नोट के दो टुकड़े करके किसने एक टुकड़ा कैप्टन को दिया होगा? कब और कहां दिया होगा? दूसरा टुकड़ा रशीद के पास कहां से आया होगा?

आख़िरी सीढ़ी पर पहुंचकर वह स्टीम लांच के छपरे पर उतरा. वहां से सरककर वह नीचे आया.

सब पट गया? उसके सामने खड़े रशीद परकार ने पूछा.

उसने हां कहा.

लांच फिर चलने लगी. एक बजे वापस यहीं आना था. तीन घंटे बिताने थे, वह भी अंधेरे समुद्र पर.

लांच किनारे की तरफ़ न जाकर किसी उलटी दिशा में जा रही थी. इक़बाल ख़ामोश बैठा था. पानी के साथ–साथ अंधेरों को भी चीरती लांच की घरघराहट साफ सुनाई दे रही थी. उसमें समुद्र की आवाज़ मिल जाने से वातावरण डरावना लग रहा था.

सूफ़ी ने बताया, हांगकांग की शिप के चीनी कैप्टन ने तस्करी का माल भी चतुराई से शामिल किया था. इसमें शराब की 175 पेटियां थीं. ये पेटियां उसने ख़लासियों के खाने–पीने के खाते में दर्ज़ कर दी थीं.

अब पानी भी पहले की तरह शांत नहीं रह गया था. समुद्र की लहरें तड़पती हुई आकर लांच के किनारों पर थपेड़े मार रही थीं. आकाश पहले से अधिक काला हो गया था. थोड़ी देर में तूफ़ान आने के आसार थे.

स्टीम लांच में धुंधला प्रकाश फैलाती लालटेन डोलने लगी. इक़बाल और रशीद परकार के साथ उसमें आठ और साथी बैठे हुए थे. डोलती लालटेन के साथ उनकी परछाइयां भी हिलने लगीं.

दूर से किनारे की रोशनी दिखाई दी तो इक़बाल को ख़याल आया कि भाऊचा धक्का (घड़ियाल गोदी) से वे बारापानी गए थे और वहां से वापस लौटकर उरण टापू के क़रीब आ पहुंचे थे. एक घंटा और सफ़र में बीत गया था.

जैसे–जैसे लांच क़रीब आती गई, उरण का किनारा स्पष्ट होता गया. घाट पर छह–सात स्टीम लांच लंगर डाले खड़ी थीं. इन जहाज़ों के बीच ख़ाली जगह खोजकर रशीद की लांच ने एक घंटे के लिए पड़ाव डाला. लालटेन इसके पहले ही बुझा दी गई थी. सभी सदस्यों के चारों ओर जैसे काल–कोठरी का निर्माण हो गया था. कुछ पलों के बाद उरण टापू की दर की लाइटों का प्रकाश धीरे–धीरे उभरने लगा. गैंग के सभी सदस्य छायाचित्र बनकर उभर आए.

यह लांच रशीद की अपनी थी. उसमें काम करने वाले तीनों टंडेल (खिवैये) उसके अपने आदमी थे. अंधेरे के वे अभ्यस्त थे. लांच खड़ी होते ही वे अपने काम में जुट गए. उनकी ज़िम्मेदारी केवल लांच की देख–रेख करने और उसे चलाने की नहीं थी, बल्कि रसोई बनाकर मेहमानों को खिलाने की भी थी.

लगभग आधे घंटे के बाद गरम–गरम मछली और भात परोसा गया. समुद्र की हवा के कारण सबको बड़ी भूख लगी थी. चुपचाप सबने खाना खाया और सफ़र के लिए फिर तैयार हो गए. यहां एक घंटा और बीत गया था. तीसरे घंटे में लांच वापस जहाज़ के पास आ गई. हांगकांग के इस जंगी जहाज़ की तुलना में लांच व्हेल मछली के पास तैरती शार्क जैसी लग रही थी. इक़बाल ने समय देखने के लिए कलाई को आंख तक ऊपर उठाया. उसी समय कड़ाके के साथ बिजली चमकी. एक पल के लिए लांच भी जगमगाकर अंधेरे में खो गई. इस समय रात का एक बजा था.

कैप्टन डेक पर तैयार खड़ा था. आख़िरी तीन घंटों में उसने स्टोर–रूम में से शराब की बोतलों की 175 पेटियां निकलवाकर डेक पर एक के ऊपर एक रखवा दी थीं. एक–एक पेटी में विदेशी शराब (कॉमन ब्रांड) की बारह–बारह बोतलें थी.

सूफ़ी अपने जीवन की कथा सुना रहा था. आज की महफ़िल उसके टेरेस पर नहीं, उसके बैडरूम में जमी थी. वह घुटनों से अपने पैर मोड़कर तकिये की टेक लगाकर बैठा था. मैंने डाइनिंग–रूम में से एक कुर्सी खींच ली थी.

आगे बढ़ने से पहले ख़ुलासा कर लिया जाए? बात का प्रवाह रोकते हुए पूछा.

उसने इशारे से हां कहा.

मुझे यह जानना है कि हांगकांग के जिस कार्गोशिप का उल्लेख आपने किया, क्या वह सचमुच मालवाहक जहाज़ था?

बिलकुल. उसने बताया, ये जहाज़ वास्तव में हांगकांग से माल लेकर निकलते हैं. साथ में तस्करी का माल भी रखते हैं.

जहाज़ मालवाहक था तो घाट पर लंगर क्यों नहीं डाला?

क्योंकि उसमें बंबई का माल नहीं था.

अर्थात अगर माल होता तो वह किनारे पर लगता.

ज़रूर.

तब कैप्टन के मैनिफेस्ट का क्या? मैंने फिर सवाल किया.

मैनिफेस्ट का मतलब है एक प्रकार की तालिका, जिसे हर कैप्टन को शिप के घाट में दाख़िल होते समय कस्टम के अधिकारियों के सामने पेश करना होता है. इस तालिका में जहाज़ में भरे तमाम माल–असबाब का विवरण होता है. स्वाभाविक था कि उसमें तस्करी के माल का उल्लेख न हो. यदि मेरी धारणा सही है तो तालिका के अनुसार अगर कस्टम के अधिकारी माल की ग़ौर से छानबीन करें तो दो नंबर का माल उनके हाथ चढ़े बिना नहीं रह सकता.

मेरी धारणा को ग़लत साबित करते हुए सूफ़ी ने बताया, हांगकांग की शिप के चीनी कैप्टन ने तस्करी का माल भी चतुराई से शामिल किया था. इसमें शराब की 175 पेटियां थीं. ये पेटियां उसने ख़लासियों के खाने–पीने के खाते में दर्ज़ कर दी थीं. इसके लिए किसी कस्टम अधिकारी को आपत्ति नहीं हो सकती.

बोतलों के ढेर देखकर किसी को शंका भी नहीं होती?

शंका का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता, क्योंकि जहाज़ अलग–अलग बंदरगाहों पर रुकता हुआ दो–चार अथवा छह महीनों में अपने देश वापस लौटता है. हांगकांग के जहाज़ में शराब की बोतलों के जो क्रेट थे, वे उसके ख़लासियों के लिए समुद्र की लंबी यात्रा के लिए पर्याप्त थे.

सूफ़ी का तर्क मेरे पल्ले पड़ा तो मैंने एक अन्य प्रश्न का उत्तर जानने की इच्छा प्रकट की, शिप का कैप्टन तस्करी में लिप्त था. इस बाबत उसके ख़लासी अनजान नहीं थे. उनमें से अगर कोई पुलिस को सूचना दे तो क्या कैप्टन की नौकरी को ख़तरा न पैदा हो जाए?

(अगले अंक में जारी)

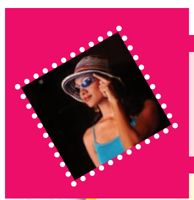

गूगल ला रहा है नया ऑपरेटिंग सिस्टम

दो दिग्गज कंपनियों की लड़ाई में उपभोक्ताओं की चांदी ही हो रही है. ये दिग्गज हैं-इंटरनेट की दुनिया की कंपनी गूगल और ऑपरेटिंग सिस्टम के क्षेत्र में एकाधिकार रखने वाली कंपनी माइक्रोसॉफ्ट. यूं तो दोनों के बीच शुरू से ठनी रही है, लेकिन अब माइक्रोसॉफ्ट को सीधी चुनौती देते हुए गूगल ने नया कंप्यूटर ऑपरेटिंग सिस्टम लांच करने की घोषणा कर दी है. नौ माह पुराने ब्राउजर सॉफ्टवेयर पर आधारित *गूगल क्रोम ओएस* अगले साल के मध्य तक बाज़ार में आ जाएगा. ग़ौरतलब है कि गूगल ने पिछले साल क्रोम ब्राउजर जारी किया था, जिसकी ब्रैंड वैल्यू पिछले दिनों सौ अरब डॉलर को पार कर गई. इस मामले में उसने माइक्रोसॉफ्ट, कोका कोला और मैकडॉनल्ड जैसे दिग्गज ब्रैंड्स को भी पीछे छोड़ दिया है.

बहरहाल, माना जा रहा है कि अगले साल तक बाज़ार में आने वाले गूगल के ऑपरेटिंग सिस्टम के बाद माइक्रोसॉफ़्ट और गूगल की जंग अगले स्तर पर पहुंच जाएगी. कहना न होगा कि हाल के वर्षों में गूगल ने इंटरनेट की दुनिया में क्रांति ला दी है. बावजूद इसके, इंटरनेट के अलावा कंप्यूटर के मामले में आज भी बिल गेट्स की माइक्रोसॉफ्ट का जवाब नहीं. इंटरनेट ब्राउज़र से लेकर कंप्यूटर चलाने के लिए ज़रूरी ऑपरेटिंग सिस्टम हो या वर्ड या एक्सेल सॉफ्टवेयर, हर जगह माइक्रोसोफ्ट की तूती बोलती है. लेकिन गूगल ने भी कई ऐसी चीज़ें शुरू कीं, जिसके बारे में किसी ने सोचा तक न था. इनमें गूगल अर्थ और इन दिनों सबसे लोकप्रिय हो चला जी-मेल भी है. गूगल टॉक और गूगल टूल बार जैसी सर्विसें भी कम लोकप्रिय नहीं हैं.

वैसे इस समय दुनिया में सबसे अधिक लोकप्रिय ब्राउजर माइक्रोसॉफ्ट का इंटरनेट एक्सप्लोरर है, जबकि मोजिला फायरफॉक्स और एपल का सफारी भी कई जगहों पर इस्तेमाल होता है. लेकिन गूगल क्रोम के बाज़ार में आने के बाद माइक्रोसॉफ्ट को बड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है. अब गूगल का नया ऑपरेटिंग सिस्टम भी माइक्रोसॉफ्ट के विंडोज एक्सपी और विंडोज विस्टा को कड़ी चुनौती देगा. शुरुआत में गूगल के इस सिस्टम का इस्तेमाल नोटबुक कंप्यूटर में होगा. हल्के वजन वाले इन नोटबुकों को पहले लैपटॉप कहा जाता था. ये एक तो सस्ते होते हैं, दूसरे इन्हें एक जगह से दूसरी जगह ले जाना आसान भी होता है. गूगल के मुताबिक नए सॉफ्टवेयर को भी जल्द ही पर्सनल कंप्यूटर यानी घरेलू डेस्कटॉप कंप्यूटर पर भी इस्तेमाल हो सकेगा. गूगल का ऑपरेटिंग सिस्टम मुख्य रूप से इंटरनेट को ध्यान में रख कर तैयार किया गया है. गूगल ऑपरेटिंग सिस्टम क्रोम के तीन उद्देश्य होंगे- स्पीड, सिम्पल और सिक्योरिटी. यानी तेज़, आसान और सुरक्षित. इस तरह हल्का और छोटा होने से गूगल क्रोम अपना काम शुरू करने में अधिक समय नहीं लगाएगा और तेज़ी से इंटरनेट से भी कनेक्ट हो सकेगा. बहरहाल, इस समय दुनिया भर में लगभग 90 प्रतिशत माइक्रोसॉफ्ट विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम का ही इस्तेमाल कर रहे हैं. माइक्रोसॉफ़्ट अक्टूबर में विंडोज़-7 नाम से नया ऑपरेटिंग सिस्टम भी बाज़ार में उतारने वाला है. हालांकि इसे पहले अगस्त में ही लाने की योजना थी.

डीकोड क्रोम
ऑपरेटिंग सिस्टम की ख़ास बातें

- ओपन सोर्स
- 2010 के मध्य तक बाज़ार में उपलब्ध
- न्यूनतम यूजर इंटरफेस, स्क्रीन पर एप्लिकेशंस के लिए काफी जगह
- डाटा किसी मास्टर सर्वर पर जमा होता है, जहां से किसी भी कंप्यूटर पर एक्सेस

बड़ी चुनौतियां

- माइक्रोसॉफ्ट का विंडोज दुनिया भर के लगभग 90 फीसदी पीसी में इंस्टॉल
- एमएस नोटबुक के लिए कम क़ीमत पर पुराना विंडोज एक्सपी दे रहा है
- एमएस विंडोज 7 लाने की तैयारी में, जो बेहद छोटे लैपटॉप में काम करेगा

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

ड्यूअल सिम वाले मोबाइल का बढ़ता क्रेज

ड्यूअल यानी एक साथ दो सिम वाले मोबाइल फोनों का क्रेज लगातार बढ़ता ही जा रहा है. ऐसा हो भी क्यों नहीं. अन्य सुविधाओं के अलावा इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह उनके बिल कम कर देता है, जो लगातार दौरे पर रहते हैं. वह दो शहरों के सिम लेकर रोमिंग के ख़र्च को कम कर लेते हैं. ड्यूअल सिम के ऐसे ज़रूरतमंदों और शौक़ीनों के लिए ख़ुशख़बरी है कि इस तरह के मोबाइल फोन बाज़ार में अब कम क़ीमत में भी उपलब्ध हो गए हैं. इंटेक्स टेक्नॉलोजी (भारत) लिमिटेड ने दो सिम वाले दो मोबाइल फोन इंटेक्स इन 4488 और इंटेक्स इन 3080 जीएसएम हैंडसेट बाज़ार में उतारे हैं. कंपनी ने कहा है कि दो अलग-अलग जीएसएम नंबरों पर ये मॉडल्स अनवरत बातचीत का अलग ही अनुभव देते हैं. इंटेक्स इन 4488 में ब्ल्यूटूथ, कैमरा, एफएम रेडियो, ऑडियो प्लेयर, 4 जीबी तक एक्सपेंडेबल मैमोरी और फोन बुक मैमोरी सब हैं. फोन बुक मैमोरी की संग्रहण क्षमता 800 कांटेक्ट्स तक है. इस मोबाइल फोन का 2.4 इंच का टीएफटी सीसीटीएन स्क्रीन और इंग्लिश- हिन्दी न्यूमेरिक की- पैड उसे आसान और सुविधाजनक बनाता है. इसकी क़ीमत 4,600 रुपये है. यह मोबाइल उन यूजर्स के लिए है, जो उसकी उपयोगिता, फीचर, लुक और मूल्यों को ध्यान में रखते हैं. जबकि इंटेक्स इन 3080 स्लाइडर फोन है. यह रेड, ऑरेंज और ब्लैक कलर में उपलब्ध है. यह ड्यूल सिम वाली श्रृंखला में सबसे कम्पैक मॉडल है. यह यूएसबी कनेक्टिविटी (पीसी से फोन में डाटा ट्रांसफर करना और फोन से पीसी में डाटा ट्रांसफर करना) में भी आता है. इसमें ब्ल्यूटूथ, कैमरा, ऑडियो प्लेयर, एफएम रेडियो जैसे फीचर हैं. इसकी क़ीमत 4,200 रुपये है.

इंटेक्स इन 4488 में ब्ल्यूटूथ, कैमरा, एफएम रेडियो, ऑडियो प्लेयर, 4 जीबी तक एक्सपेन्डेबल मैमोरी और फोन बुक मैमोरी सब हैं. फोन बुक मैमोरी की संग्रहण क्षमता 800 कांटेक्ट्स तक है.

हर्वी फॉयल दिलाएगी गर्मी से राहत

गर्मी है तो गरम तो रहना ही पड़ेगा. लेकिन एक ऐसी चीज़ है, जिसका उपयोग कर आप अपने घर को हमेशा के लिए कूल बना सकते हैं. मैकमिलन इनसॉल्यूशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड ने एक ऐसी फॉइल तैयार की है, जो सूर्य की किरणों को वापस वायुमंडल में भेज देती है. इससे जहां घर का तापमान कम हो जाता है, वहीं बिजली की बचत भी होती है.

जी हां, बिना एसी, पंखा और कूलर चलाए घर का तापमान छह से आठ डिग्री तक कम हो सकता है. इसके लिए आपको थोड़ी मेहनत करनी होगी. ऐसा करने के लिए इस फॉइल को आपको अपने घर की छत के अंदर लगाना होगा.

दरअसल कंपनी ने *हर्वी फॉइल 800* नाम से छह परतों वाली एक फॉइल डिज़ाइन की है. इसे एल्यूमीनियम से लेमिनेट किया गया है. इसे घर की छत पर लगाने से तापमान में छह से आठ डिग्री तक की कमी आ सकती है. *हर्वी फॉइल 800* को पॉलिमर से बंधा होता है, जो सूर्य से आने वाली किरणों को रोकता है.

वैसे तो इसे सभी तरह के घरों में लगा सकते हैं. जैसे आवासीय, कमर्शियल, इंडस्ट्रीयल और एनिमल/पॉल्ट्री फॉर्म आदि, लेकिन यह एनिमल या पॉल्ट्री फार्म के लिए सबसे बेहतर है. इस फॉइल का उपयोग घर की छत के ऊपर नहीं, बल्कि छत के ठीक नीचे करना होता है. जो लोग छत में एस्बेसटस आदि का इस्तेमाल करते हैं, उनके लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है. इसे एस्बेसटस आदि में लगाना भी कोई कठिन कार्य नहीं है.

फेसबुक बनेगा यूजर फ्रेंडली

सोशल नेटवर्किंग साइट फेसबुक पर जाने वाले अक्सर शिकायत करते हैं कि यहां प्राइवेसी नहीं रहती. कोई भी शख्स यह जान सकता है कि किसी के कितने और किस तरह के मित्र हैं. यह भी कि किसी के लिए उसके मित्रों ने क्या संदेश छोड़े हैं. लेकिन अब चिंता की कोई बात नहीं, क्योंकि इसके प्राइवेसी कंट्रोल को और यूजर फ्रेंडली बनाया जा रहा है.

अब यह तय करना आसान होगा कि आपकी पोस्ट की हुई चीज़ें कौन देख सकता और कौन नहीं. ग़ौरतलब है कि लगभग पांच साल पुरानी फेसबुक वेबसाइट के इस समय 20 करोड़ से भी अधिक यूजर हैं. लेकिन प्राइवेसी कंट्रोल में मुश्किल होने से इसके यूजर में नाराज़गी बढ़ रही है. इससे उसकी साख भी प्रभावित हो रही है.

दरअसल, पहले फेसबुक के प्राइवेसी कंट्रोल की सेटिंग काफी मुश्किल और ऊबाऊ थी. इसके लिए किसी भी यूजर को कम से कम इंटरनेट पर पांच पेजों और 40 अलग-अलग सेटिंग विकल्पों पर काम करना पड़ता था. लेकिन अब यही काम सिर्फ़ पांच मिनट में ही किया जा सकता है.

जी हां, फेसबुक ने प्राइवेसी सेंटिंग को पांच के बजाय एक पेज में समेट दिया है. अब आप यह कर पाएंगे आपकी दी हुई जानकारी और तस्वीरों को आख़िरकार कौन देख सकता है और कौन नहीं. जैसे, अगर आप को अपनी जानकारी सभी लोगों को दिखानी है और कोई जानकारी सिर्फ़ अपने दोस्तों और परिवार को, तो आप जल्द ही ऐसा आसानी से कर पाएंगे.

फैशन भी चलता है मौसम के मिज़ाज से

सोनिका अग्रवाल

बदलाव प्रकृति का नियम है. यही कारण है कि मौसम के अनुसार फैशन भी बदलता रहता है. कई बार हम सोचते हैं कि इंडियन ड्रेस में स्टाइलिश कैसे लग सकते हैं. यदि आप भी ऐसा सोचती हैं तो ऐसी सोच को तुरंत बदल लीजिए. इसलिए कि आज के समय में जो कुछ दूसरों से हटकर हो, वही फैशन बन जाता है. इसलिए हर किसी को आज़ादी है कि वह अपनी स्टाइल को ख़ुद बनाए. आप यदि क्रिएटिव हैं तो अपनी पुरानी व बेकार पड़ी इंडियन ड्रेसेस पर कुछ वर्क आदि से नया करने की सोचकर उसी को नया लुक दे सकती हैं. अगर आप कुछ नया करने की सोच रही हैं, तो इन बातों पर अमल करें-

1 स्लीवलेस कुर्ते के साथ सलवार की जगह जींस पहनें.
2 आजकल स्लैक्स का फैशन फिर से लौट आया है. आप भी अपने लुक को बदलने के लिए शार्ट कुर्ते के साथ स्लैक्स, लेगिंग्स ट्राय कर सकती हैं.
3 टाइट्स व स्टाइलिश बैग आपकी ख़ूबसूरत ड्रेस पर चार चांद लगाते हैं.
4 हाई वेस्ट कुर्ते और रोल्ड अप स्लीव्स के साथ एक ख़ूबसूरत सा स्टॉल एक नया लुक देगा.
5 किसी भी ड्रेस के साथ भारी-भरकम ज्वैलरी के बजाय डेलीकेट चैन पैंडल व इयरिंग्स पहनना आपके लिए बेहतर होगा.
6 जींस, टी-शर्ट या कुर्ते के साथ दो-तीन रंगों के प्लेन वुडन कड़े या प्लास्टिक या रबर की रंग-बिरंगी स्टाइलिश चूड़ियां भी ट्राय करके अपने आप को एक ट्रैंडी लुक दे सकती हैं.
7 चूड़ीदार सलवार की जगह अगर आप जींस या स्लेक्स ट्राय करती हैं तो इस ड्रैस पर चुन्नी की जगह स्टॉल या स्कार्फ डालना भी आपको एक बेहतर मॉडर्न लुक देगा.

फोटो- प्रभात पाण्डेय

8 आजकल टी-शर्ट के बजाय लंबे टॉप लेकर देखिए. यक़ीनन एक नया लुक मिलेगा.
9 वैसे फ्लैट चप्पलों का दौर चल रहा है. अगर आप लेंगिग्स या चूड़ीदार पर ऐसी चप्पलें पहनें तो आपकी ड्रैस की ख़ूबसूरती और बढ़ जाएगी.

फैशन के इस दौर में स्कर्ट भी ज़्यादा चल रही है. कभी शोख, कभी चंचल, कभी लंबी और घेरदार तो कभी छोटी और ट्रैंडी स्कर्ट्स हमेशा युवतियों की शोभा बढ़ाती है. चाहे इस पर लांग टॉप हो या शॉर्ट कुर्ता, सभी स्कर्ट पर अच्छे लगते है. स्कर्ट भी कई तरह की होती है. जैसी अच्छी लगे, वैसी पहनें.

1. लांग स्कर्ट- यह स्कर्ट कमर से टखनों तक लंबी होती है तथा इसमें दो तरह की वैरायटी आपको मिल सकती है. एक घेरदार और दूसरी ए लाइन वाली. इस स्कर्ट पर चाहे छोटा टॉप हो, शॉर्ट कुर्ता या फिर कशीदाकारी वाली चोली- लांग स्कर्ट के साथ सब कुछ जंचता है. आप चोली पर हैवी दुपट्टे का प्रयोग कर के लहंगे का मज़ा भी ले सकती हैं.
2. शार्ट या मिनी स्कर्ट- घुटनों से ऊपर तक की लंबाई होती है. इस पर आप ऑल्टर नेक या टी-शर्ट भी पहनेंगी तो ख़ूब जंचेंगी. मिनी स्कर्ट टीन एजर्स और छोटी बच्चियों के ऊपर भी अच्छी लगती हैं. मिनी स्कर्ट आप जींस या स्लेक्स के साथ पहन सकती हैं. वैसे तो आजकल डेनिम की स्कर्ट जींस पर भी पहनी जाती है.
3. ट्यूब स्कर्ट- इसे अधिकतर ऑफिस में या एयर होस्टेस को पहने हुए देखा होगा. इसकी लंबाई घुटनों के नीचे तक होती है. इस पर आप कोट, फ्रिल वाले कॉटन टॉप या फॉर्मल शर्ट के साथ पहनेंगी तो अच्छी लगेंगी.
4. मिड लेंथ स्कर्ट- यह घुटनों तक होती है. आमतौर पर स्कूल की बच्चियां इसका उपयोग करती हैं. स्कूलों में प्लेट्स डली स्कर्ट्स का चलन आम है. पिकनिक या घूमने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है.
5. अंब्रेला घेर वाली स्कर्ट- इसमें काफी घेरा होता है और यह टखनों तक होती है. इसका अंब्रेला घेर इसे शानदार लुक देता है. इसे शार्ट टी शर्ट या फिटिंग वाले टॉप के साथ पहन सकती हैं. इसे भी लहंगे की तरह इस्तेमाल में लाया जा सकता है.
6. स्कर्ट कम बरमूडा- बेफ़िक्री वाले अंदाज़ में पहना जाने वाला यह स्कर्ट भी आपने स्कूल यूनीफार्म के रूप में या टीन एज लड़कियों को पहने देखा होगा. यह स्कर्ट कम लंबाई की और घुटनों से कुछ ऊपर तक होती है. इसमें भी स्कर्ट की तरह घेर होता है, लेकिन बीच में इसे बरमूडा की तरह डिज़ाइन किया जाता है. ताकि भागने-दौड़ने तथा उठने-बैठने में आसानी हो. इस पर आप कॉटन शर्ट, टी-शर्ट, छोटे कुर्ते आदि पहन सकती हैं.

तो फिर देर किस बात की, बाज़ार में जाएं और मानसून के मिज़ाज के हिसाब से फैशन की चीज़ें ख़रीद लाएं.

sonika.chauthiduniya@gmail.com

मुक्केबाज़ी ने सीख ली मार्केटिंग

सिर पर बचाव के लिए कुछ नहीं. दनादन पड़ते मुक्के. शरीर के ऊपरी हिस्से पर कपड़े नहीं. मसल्स ज़्यादा बेहतर तरीक़े से दिखाई दें. हर क़िस्म की चमक-दमक, शान-ओ-शौक़त. मुक्के से बरसता धन...और, ज़्यादा से ज़्यादा ग्लैमरस होने की कोशिश. आधुनिकता की दौड़ में यह नई कोशिश है मुक्केबाज़ी की. वह मुक्केबाज़ी, जो हमेशा से वर्ल्ड हैवीवेट मुक्केबाज़ी के सामने दबकर रहती रही है. कोई इवांडर होलीफील्ड या माइक टाइसन या उससे पहले मुहम्मद अली शोहरत की जिन बुलंदियों को छूता है, उसे सिर्फ़ और सिर्फ़ देखते रहना ही ओलंपिक पदक विजेता की नियति बन जाती है. वह सिर्फ़ सपने देख सकता है प्रोफेशनल रिंग में कूदने के. या फिर वह किसी निराशा से जूझते गुरचरण सिंह की तरह देश छोड़कर किसी और मुल्क में बसकर भविष्य बेहतर करने के सपने देखता रहा है. उस निराशा और हताशा को मुक्केबाज़ी से अलग करने की कोशिश में वह चमक-दमक लाने की तैयारी है, जो इस खेल को प्रायोजकों की पसंद बना सकती है. असल में यही आधुनिक ज़माने की ज़रूरत है. यक़ीनन ऐसे लोग कम नहीं होंगे, जो मुक्केबाज़ी को अमानवीय खेल मानते हैं. जब बात एमेच्योर की आती है, तब फिर भी थोड़ी राहत होती है, क्योंकि नियम कड़े होते हैं. हेडगियर की वजह से मुक्केबाज़ को चोट कम लगती है. लेकिन जब अगले साल यह सीरीज़ होगी, तो उसमें हेडगियर नहीं होगा. बिजेंदर, अखिल या जितेंदर सरीखे मुक्केबाज़ बग़ैर सिर पर कुछ पहने मुक्केबाज़ी करेंगे. वजह-इसे ज़्यादा से ज़्यादा ग्लैमरस बनाना है. इसके लिए अगर चोट लगती है, तो क्या फ़र्क़ पड़ता है. यह खेलों की मार्केटिंग का ज़माना है. जितना आकर्षक दिखेगा, उतना ज़्यादा बिकेगा. मुक्केबाज़ी ने यह सीख लिया है कि उनके खेल को बेहतर मार्केट की ज़रूरत है. यह सीखा है कि उसके लिए उन्हें क्या क़दम उठाने होंगे. चाहे वह भारतीय फेडरेशन हो या विश्व बॉक्सिंग फेडरेशन, किसी ने हिचक नहीं दिखाई है. इसे लेकर भी कोई हिचक नहीं है कि कोई भारतीय बॉक्सर एशिया से बाहर की टीम के लिए लड़े. यहां टीमें कॉन्टिनेंट के हिसाब से होंगी, लेकिन मुक्केबाज़ कहीं भी जा सकता है. ठीक वैसे ही, जैसे फुटबॉल के अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में होता है. और यहां से करोड़ों रुपये कमाए जा सकते हैं. आज से एक दशक पहले गुरचरण सिंह सुविधाओं और प्रेरणा का अभाव बताते हुए देश छोड़ गए थे. लेकिन लगता नहीं कि आगे ऐसा होगा. अंतरराष्ट्रीय फुटबॉल ने सिखाया है कि अपने खेल को किस तरह बेचा जाए. भारत में यह काम क्रिकेट ने किया है. वही क्रिकेट, जहां 70 के दशक या यूं कहें कि अस्सी के दशक की शुरुआत में एक टेस्ट खेलने पर पांच हज़ार रुपये बमुश्किल मिलते थे, वहां अब आईपीएल में बनाया एक-एक रन कई बार लाखों का होता है. यह फ़र्क़ है, जिसे क्रिकेट ने जाना और समझा. जगमोहन डालमिया से लेकर आईएस बिंद्रा और अब ललित मोदी तक क्रिकेट के कतरे-कतरे से लाखों कमा लेना चाहते हैं. क्रिकेटर का भी फ़ायदा है. इस ज़माने का कोई क्रिकेटर मुफ़लिसी में दिन नहीं बिता सकता. अगर कोई अपनी लाइफ स्टाइल को लेकर ज़रा सी भी प्लानिंग कर लेता है, तो वह बड़े आराम से बुढ़ापे में भी ऐशो-आराम के साथ रह सकता है. यह अपने खेल को बेचने की कला है, जिसने उसे यहां तक पहुंचा दिया है.

कई और खेलों ने कोशिश की है, लेकिन अभी तक वे बहुत आगे नहीं जा पाए हैं. जैसे टेबल टेनिस और बैडमिंटन में थोड़ी सेक्सी, थोड़ी आकर्षक पोशाक के पक्ष में हवा बही थी. हालांकि इसे जल्दी लागू भी किया जा सकता था, लेकिन कोई कोशिश नहीं हुई. यहीं वे खेल बाज़ी मार जाते हैं, जो थोड़ी बेहतर और खुली सोच रखते हैं.

दर्शकों के हिसाब से देखा जाए, तो सबसे बोरिंग खेल गॉल्फ हो सकता है. लेकिन दुनिया में यह खेल जितना पैसा लेकर आता है, उसकी वजह खेल को बेहतर तरीक़े से बेचा जाना ही है. भारत में भी, जहां कुछ साल पहले तक आम मध्यमवर्गीय परिवार इस खेल से अनजान था, आज अपने बेटे को जीव मिल्खा या अर्जुन अटवाल बनाने का सपना देखता है. वजह एक ही है. खेल को बेहतर तरीक़े से बेचा गया. इस वजह से पैसा आया. पैसा आया, तो गॉल्फर अमीर हुए. बेहतर लाइफ स्टाइल दिखेगी, तो ज़्यादा लोग उस खेल में आएंगे. भारत के राष्ट्रीय खेल हॉकी की दुर्दशा अगर हुई है, तो ख़राब मार्केटिंग उसकी बहुत बड़ी वजह है. सोचिए, आईपीएल से पहले उसी सोच पर प्रीमियर हॉकी लीग शुरू हुआ था. आज वह लीग नदारद है और आईपीएल पूरी दुनिया में छाता नज़र आ रहा है. यह फ़र्क़ है अपने खेल को बेचने का. हॉकी में जितने प्रायोजकों ने क़दम रखा, वे निराश होकर बाहर गए. जिन खेलों के प्रशासक बेहतर थे, वहां कभी प्रायोजक को निराश होने की ज़रूरत नहीं पड़ी. तभी आज जब क्रिकेट का नाम लेते ही बड़ी गाड़ियां, लोगों को हुजूम जेहन में आता है, हॉकी का नाम लेने पर सिर्फ़ शिकायतें याद आती हैं.

मुक्केबाज़ी ने जो किया है, वह दूसरे खेलों के लिए सीखने लायक काम है. बिजेंदर सिंह को अगर आज घर-घर में जाना जाता है, तो इसकी वजह ओलंपिक कांस्य ज़रूर है, लेकिन वही एकमात्र वजह नहीं है. इसके बाद उनकी मार्केटिंग टीम ने इस मुक्केबाज़ को जिस तरह लोगों के सामने पेश किया है, वह कभी नज़रों से उतरे नहीं. मार्केटिंग के विशेषज्ञ कहते हैं कि किसी के लिए भी ज़रूरी है-लगातार ख़बरों में रहना. इसीलिए क्रिकेट का हर आयोजन बड़ी योजना के साथ तब होता है, जब ज़्यादा से ज़्यादा पब्लिसिटी हो सके. यहां तक कि कौन सी घोषणा कब किए जाने पर उसे ज़्यादा कवरेज मिलेगी, इसका भी ख़याल रखा जाता. यह मार्केटिंग है, जिसे मुक्केबाज़ी ने सीखना शुरू किया है. भारत में अब भी प्रायोजकों के पास क्रिकेट के अलावा दूसरे ख़ास विकल्प नहीं हैं. मुक्केबाज़ी ने उन्हें विकल्प देने का काम किया है. बहरहाल, बाक़ी खेल चाहें, तो अब भी सीख सकते हैं. पर वे सीखेंगे?

राकेश चतुर्वेदी
feedback.chauthiduniya@gmail.com

फोटो-प्रभात पाण्डेय

खेलने के बाद खेलाएंगे दादा!

भारत के सबसे सफल क्रिकेट कप्तान सौरभ गांगुली अब मैदान के बाहर दूसरी पारी शुरू करना चाह रहे हैं. लेकिन यह सोचना जितना आसान है, मुमकिन हो पाना उतना ही कठिन है. दादा के क़रीबी लोगों ने पिछले दिनों इस ख़बर को ख़ूब हवा दी कि वह क्रिकेट प्रशासक बनना चाहते हैं. दावा तो यहां तक कर दिया गया कि वह 2014 में बीसीसीआई अध्यक्ष का चुनाव भी लड़ सकते हैं. ग़ौरतलब है कि बीसीसीआई का अध्यक्ष बारी-बारी से अलग-अलग क्षेत्रों से चुना जाता है. 2014 के लिए यह पद पूर्वी क्षेत्र के लिए आरक्षित है. लेकिन इससे पहले नियमों के तहत उन्हें कम से कम दो बार बोर्ड की जनरल बॉडी मीटिंग में हिस्सा लेना होगा. यहीं आकर पेंच फंस गया है.

दरअसल पश्चिम बंगाल क्रिकेट एसोसिएशन का एक खेमा बीसीसीआई के पूर्व अध्यक्ष जगमोहन डालमिया को धूल चटाना चाहता है. लेकिन ऐसे लोगों की परेशानी यह है कि डालमिया को चुनौती देने वाला कोई चेहरा उन्हें ढूंढ़े नहीं मिल रहा. ऐसे में उम्मीद जगा दी ख़ुद सौरभ गांगुली ने. उन्होंने अपने 37वें जन्मदिन पर कह दिया कि वह कि वह क्रिकेट संस्थाओं से जुड़ना चाहते हैं. उन्होंने कहा कि संन्यास लेने के बाद भी वह क्रिकेट से अलग नहीं रहना चाहते. हालांकि गांगुली ख़ुद अभी अपने पत्ते नहीं खोलना चाहते हैं. इसीलिए कहा कि मैं बंगाल क्रिकेट का एक हिस्सा बनना चाहता हूं. मुझे नहीं पता कि इसके आगे क्या होगा.

जहां तक डालमिया की बात है तो हाल तक बीसीसीआई अध्यक्ष रहे शरद पवार और उनका गुट उन्हें पसंद नहीं करता. डालमिया को अध्यक्ष चुनाव लड़ने से रोकने के लिए ही इस गुट ने पिछले साल उनके ख़िलाफ़ कई तरह की क़ानूनी कार्रवाई तक की. बावजूद इसके, डालमिया बच निकले. चूंकि इस बार अध्यक्ष पूर्व क्षेत्र का ही होगा, इसलिए डालमिया यह मौका नहीं छोड़ने वाले. डालमिया का अध्यक्ष बनना पवार खेमे को भारी पड़ेगा. वह भी बदले की कार्रवाई कर सकते हैं. इसी सबसे बचने के लिए यह गुट पश्चिम बंगाल क्रिकेट एसोसिएशन के चुनाव में ही सौरभ गांगुली को खड़ा कर डालमिया को पटखनी देना चाहता है. इसके बाद बीसीसाई के दरवाज़े भी गांगुली के लिए खुल जाएंगे.

वैसे डालमिया से हिसाब दादा को भी चुकाना है. दादा खेमे का मानना है कि ग्रैग चैपल प्रकरण में मशहूर ई-मेल दरअसल डालमिया ने ही लीक की थी. उस झटके के बाद दादा कभी संभल नहीं सके. किरण मोरे की अध्यक्षता वाली चयन समिति ने टीम से ही बाहर निकाल दिया. बाद में पवार की पहल पर वेंगसरकर की अध्यक्षता वाली चयन समिति ने उन्हें टीम में फिर से जगह दी थी. इस तरह दादा के लिए जहां डालमिया से बदला लेने का मौका है, वहीं वह पवार का अहसान भी उतार सकते हैं. लेकिन इस सबसे पहले उन्हें राज्य क्रिकेट एसोसिएशन की राजनीति से पार पाना होगा, जो ऊपर से कितना भी आसान दिखे लेकिन भीतर से काफी चुनौतीपूर्ण है.

हालांकि गांगुली को भारतीय क्रिकेट का कमबैक किंग कहा जाता है. हाल के सालों में भारतीय टीम से जब-जब उनकी छुट्टी की गई, वह हर बार बुलंद हौसलों के साथ टीम इंडिया में लौटे. लेकिन आख़िरकार पिछले साल उन्होंने अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट से संन्यास ले ही लिया. वह भारत के सबसे सफल कप्तान माने जाते हैं और समझा जाता है कि टीम में नए व आक्रामक तेवर उनकी ही देन है. गांगुली ने 113 टेस्ट खेले, जिसमें उन्होंने 7,212 रन बनाए. उन्होंने 311 वनडे मैच भी खेले, जिनमें 11,363 रन बनाए थे.

गांगुली इन दिनों आईपीएल की कोलकाता नाइट राइडर्स (केकेआर) टीम का हिस्सा हैं. और, केकेआर का क़िस्सा तो जगज़ाहिर ही है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

फेल्प्स ने डुबोया एक और विश्व रिकार्ड

माइकल फेल्प्स से प्रतिद्वंद्वी तैराक तो ख़ौफ़ खाते ही थे, अब विश्व रिकार्ड भी डरने लगे हैं. पिछले साल बीजिंग ओलंपिक में आठ स्वर्ण पदक जीतने वाले फेल्प्स ने रिकार्डों को डुबाना अभी भी नहीं छोड़ा है. पिछले दिनों उन्होंने यूएस तैराकी चैंपियनशिप में 100 मीटर बटरफ्लाई में नया विश्व रिकार्ड बना दिया है. इससे पहले इयान क्रोकन ने मांट्रियल में 2005 में हुए विश्व चैंपियनशिप में 100 मीटर बटरफ्लाई 50.40 सेकेंड में पूरा किया था. फेल्प्स यह दूरी 50.22 सेकेंड में ही पूरी कर ली. फेल्प्स ने कहा कि मैं यह बड़ी उपलब्धि हासिल करके बहुत ख़ुश हूं. ग़ौरतलब है कि फेल्प्स के नाम तीन रिले विश्व रिकार्ड भी दर्ज़ हैं. उन्होंने 2005 को छोड़कर 2001 से हर साल विश्व रिकार्ड बनाया है. हालांकि उनके कोच बॉब बावमैन को यक़ीन नहीं था कि फेल्प्स इस साल भी नया विश्व रिकार्ड बनाने में सफल होंगे.

कॉमनवेल्थ गेम्स की तैयारी में लगा बैक गियर

दिल्ली में कॉमनवेल्थ गेम्स का आयोजन 1982 के एशियाई खेलों की तर्ज़ पर होना तय हो गया है. अगले साल अक्टूबर में होने वाले गेम्स के लिए अभी तक अधिकतर स्टेडियम आधे भी नहीं बने हैं, जबकि उन पर 1493 करोड़ रुपये ख़र्च किए जा चुके हैं. इस बीच अनुमानित बजट भी कई अरब बढ़ गया है. लालफीताशाही और दिल्ली सरकार व नगर निगम के बीच खींचतान का आलम यह है कि कई प्रोजेक्ट के लिए टेंडर ही समय पर जारी नहीं हो सके. कई के लिए तो पिछले महीने ही टेंडर जारी हो पाए हैं. ऐसे में तय है कि देश को 1982 के एशियाई खेलों के आयोजन के समय हुए बुरे अनुभव से फिर गुज़रना पड़ेगा.

ग़ौरतलब है कि एशियाड के लिए बनने वाला प्लेयर्स हाउस कई साल बाद ही बन सका, जिससे उसका मक़सद ही पूरा नहीं हुआ. यह दूसरी बात है कि आज उसका इस्तेमाल दिल्ली सरकार के सचिवालय के रूप में हो रहा है. कॉमनवेल्थ गेम्स की तैयारी को लेकर ख़ुद खेल मंत्री एमएस गिल भी चिंतित हैं और उन्होंने यह चिंता संसद तक में जताई है. देश को चीन के बराबर लाने की बात अक्सर की जाती है, लेकिन यह जानकर हैरानी होगी कि चीन ने बीजिंग ओलंपिक के लिए सभी स्टेडियम साल भर पहले तैयार कर लिए थे. इतना ही नहीं, उसके खिलाड़ियों ने नए स्टेडियमों में ही साल भर अभ्यास किया, जिससे पदक जीतने में वह शिखर पर रहा. बहरहाल, वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी ने केंद्रीय बजट में कॉमनवेल्थ गेम्स का बजट बढ़ा दिया है. खेलों के लिए बजट में 3,472 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है, जबकि अंतरिम बजट में सिर्फ़ 2,112 करोड़ का प्रावधान किया गया था. यही नहीं, जब इन स्टेडियमों का निर्माण कार्य शुरू हुआ था तो उसके लिए 3,792 करोड़ रुपये आबंटित किए गए थे, लेकिन अब यह ख़र्च बढ़कर 4,644 करोड़ हो गया है. यानी अब अनुमानित लागत में 852 करोड़ रुपये की बढ़ोतरी हो गई है. कॉमनवेल्थ गेम्स में भाग लेने वाले लगभग 70 देशों के पांच हज़ार से खिलाड़ी और अधिकारी खेल गांव में ठहरेंगे. खेलों के आयोजन के बाद खेल गांव के फ्लैटों को बेच दिया जाएगा. अनुमान है कि इस आवासीय स्थल का एक छोटा और अत्याधुनिक फ्लैट भी एक करोड़ रुपये से भी अधिक की क़ीमत में बिकेगा. हालांकि इन फ्लैटों की गुणवत्ता को लेकर भी सवाल उठाए जा रहे हैं. आनन-फानन में तैयार किए जा रहे ये फ्लैट 1982 एशियाड के लिए बनाए गए खेल गांव जैसे निकल सकते हैं. ग़ौरतलब है कि एशियाड विलेज में रहने वाले छत टपकने से लेकर सीवर तक की समस्या से आज तक जूझ रहे हैं. कॉमनवेल्थ के लिए खेल गांव बनाने की ख़ातिर 325 करोड़ का अनुमान लगा कर धन आबंटित किया गया था. इनमें से 276 करोड़ ख़र्च हो चुका है और इस पर 1,034 करोड़ अधिक ख़र्च होने का अनुमान है. यानी अनुमान से 709 करोड़ रुपये अधिक. इसी तरह स्टेडियमों में दिल्ली विश्वविद्यालय में बनाए जाने वाले ट्रेनिंग सेंटर पर 222 करोड़ के ख़र्च का अनुमान था. इसमें से अभी केवल 97 करोड़ ही ख़र्च हुआ है और अब उस पर 306 करोड़ ख़र्च होने का अनुमान है. यही हाल टेनिस के लिए आरके खन्ना स्टेडियम का है. उस पर 30 करोड़ ख़र्च होने का अनुमान था, जो बढ़कर 66 करोड़ हो गया है. उधर, गुड़गांव के खादरपुर शूटिंग रेंज पर 15 करोड़ ख़र्च का अनुमान था, जिसके बढ़ कर 29 करोड़ हो जाने का अंदाज़ा है. कॉमनवेल्थ गेम्स का उद्घाटन और समापन समारोह जवाहर लाल नेहरू स्टेडियम में होना है. इस स्टेडियम पर 961 रुपये ख़र्च होना है, जिसमें से अभी तक 346 करोड़ ही ख़र्च हुआ है. इंदिरा गांधी स्टेडियम, तालकटोरा स्टेडियम, नेशनल स्टेडियम, कर्णी सिंह शूटिंग रेंज, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में ट्रेनिंग केंद्र आदि तक का यही हाल है.

फोटो-सुनील मल्होत्रा

कॉमनवेल्थ गेम्स का उद्घाटन और समापन समारोह जवाहर लाल नेहरू स्टेडियम में होना है. इस स्टेडियम पर 961 रुपये ख़र्च होना है, जिसमें से अभी तक 346 करोड़ ही ख़र्च हुआ है. इंदिरा गांधी स्टेडियम, तालकटोरा स्टेडियम, नेशनल स्टेडियम, कर्णी सिंह शूटिंग रेंज, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में ट्रेनिंग केंद्र आदि तक का यही हाल है.

मान गए मोना

जस्सी जैसी कोई नहीं से नाम कमाने वाली मोना सिंह अब जल्द ही आर जे के रूप में नज़र आएंगी. वह भी फिल्मों में और आमिर ख़ान के साथ. जी हां, मोना जल्द ही आमिर की अतिचर्चित फिल्म-थ्री इडियट्स- में दिखेंगी. वैसे तो मोना आज छोटे पर्दे की बड़ी स्टार हो गई हैं और विज्ञापनों में भी धंधा अच्छा चल रहा है. फिर भी आमिर के साथ फिल्म करके वह लोगों को यह तो दिखला ही देंगी कि वाकई मोना जैसी कोई नहीं.

फ़िज़ा ने बना दी फ़िज़ा

फोटो-प्रभात पाण्डेय

चैनलों की लोकप्रियता बढ़ाने में रियलिटी शो सबसे कारगर हथियार साबित हो रहे हैं. हर चैनल पर टीआरपी सबसे अधिक इसी तरह के शो बटोर रहे हैं. यही कारण है कि अलग-अलग तरह के रियलिटी शो की भरमार होती जा रही है. इसमें नया नाम जुड़ गया है-इस जंगल से मुझे बचाओ. ख़बर यह नहीं है कि यह सोनी पर शुरू हो गया है. ख़बर यह है कि इसके ज़रिए फिज़ा ने भी मनोरंजन की दुनिया में फिज़ा बनानी शुरू कर दी है. वही फिज़ा, जो हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री भजनलाल के पुत्र चंद्रमोहन से शादी करने से पहले तक अनुराधा बाली थीं. इस्लाम क़बूल कर चंद्रमोहन जहां चांद मोहम्मद हो गए, वहीं अनुराधा हो गईं फिज़ा. 13 जुलाई से शुरू हुए इस रियलिटी शो में फिज़ा ने निगार ख़ान की जगह ली है, जिन्हें वर्किंग वीजा न मिल पाने के कारण यह शो छोड़ना पड़ा. वैसे इसमें कुल दस प्रतियोगी हैं. फिज़ा के अलावा इसमें दूसरे प्रतियोगी हैं-श्वेता तिवारी, अमन वर्मा, आकाश दीप सहगल, चेतन हंसराज, पॉप स्टार अनैदा, मार्क रॉबिंसन, मोना वासु, एम टीवी रॉडीज की प्रतियोगी रही पलक (गुरमीत) और हिप हॉप के उस्ताद इश्क़ वैक्टर. इन्हें मलेशिया के घने जंगलों में दो महीने गुज़ारने हैं. वह भी ख़तरनाक से ख़तरनाक करतब दिखाते हुए. ख़तरनाक क़िस्म के इस रियलिटी शो को यूडी के साथ मिनी माथुर पेश कर रही हैं. मिनी के लिए इन दिनों ख़ुशियां ही ख़ुशियां ही हैं. एक तो वह हाल में ही दूसरी बार मां बनी हैं और दूसरे, उनके पति कबीर ख़ान द्वारा बनाई गई ख़ूबसूरत फिल्म-न्यूयार्क-भी सफल हो गई है.

मीरा करेंगी मगन

चैनलों की भीड़-भाड़ में एनडीटीवी इमैजिन तेज़ी से अपना स्थान बनाता जा रहा है. गीत-संगीत पर आधारित रिएलिटी शो से लेकर सामाजिक मुद्दे पर बने सीरियलों तक की गुणवत्ता देखते ही बनती है. यह चैनल अब एक और स्तरीय सीरियल शुरू करने वाला है-मीराबाई. इसकी कहानी उस राजपूत राजकुमारी की है, जिसने अपना सारा जीवन भगवान कृष्ण को अर्पित कर दिया था. मीरा जब चार साल थीं, तभी कृष्ण को पति मान लिया था. महल की ऐशो आराम की ज़िंदगी छोड़कर भक्ति की राह पर निकल पड़ी थीं. राह भी ऐसी, जिसमें क़दम-क़दम पर बाधाओं की भरमार थी. इस सीरियल के ज़रिए आपको मीरा के भजन और सच्ची प्रेम कहानी देखने को मिलेगी. यूं तो इसकी कहानी पुरानी है, लेकिन उसे नए संदर्भ और सरोकारों से जोड़ने की नई कोशिश अवश्य हुई है. यही इसका आकर्षण है.

राखी बनेंगी राजकुमारी

विवादों की महारानी राखी सावंत राजकुमारी बनना चाहती हैं. इसके लिए उन्होंने अपनी शादी को अवसर बनाया है. स्वयंवर चल रहा है. जल्द ही उन्हें अपना राजकुमार भी मिल जाएगा. स्वयंवर जीतने वाले के साथ वह 30 लाख की नेकलेस और इतनी ही महंगी लहंगा-चोली पहन कर सात फेरे लेंगी. अभावों में पली-बढ़ी राखी करोड़ों ख़र्च कर अपनी शादी को बॉलीवुड की सबसे चर्चित शादी बनाना चाहती हैं. इसमें उसकी मदद कर रही हैं मशहूर डिज़ाइनर नीता लुल्ला और फराह अली ख़ान. ऐश्वर्या राय की चहेती डिज़ाइनर नीता का चुनाव राखी ने काफी सोच-समझ कर किया है. पिछले दिनों एक एपीसोड में राखी के साथ दिखीं नीता और फराह की बातचीत इस सिलसिले में बिन बोले ही बहुत कुछ कह गई. कितनी अजीब बात है कि राखी ने अपनी बिगड़ैल लड़की की कथित छवि से छुटकारा एक रियलिटी शो से ही पाया था और आज गृहस्थी भी वह रियलिटी शो के ज़रिए ही बसा रही है. बहरहाल, राखी के लिए लहंगा-चोली बनाने के कठिन काम में नीता और उनकी पूरी टीम जुट गई है. फराह ने तो नेकलेस लगभग बना भी लिया है. नीता जहां मशहूर फ़ैशन डिज़ाइनर हैं, वहीं फराह भी ज़ेवरात की दुनिया की बड़ी हस्ती हैं. ग़ौरतलब है कि वह अपने ज़माने के चर्चित अभिनेता संजय ख़ान की पुत्री हैं. इतना ही नहीं, वह जाएद ख़ान की बहन और ह्रतिक रोशन की साली भी हैं. कुल मिला कर यह कि आधुनिक जीवन में स्वयंवर के ज़रिए टीवी स्क्रीन पर शादी करने वाली राखी इतिहास बनाने पर आमादा हैं.

प्रियंका की मुराद पूरी

आज किसी भी अभिनेत्री का फिल्मी सफ़र तब तक पूरा नहीं माना जाता, जब तक कि वह यशराज बैनर के साथ काम न कर ले. लाख सफल हो जाने के बावजूद प्रियंका चोपड़ा भी इस बात को शिद्दत से महसूस करती थीं. लेकिन अब उन्हें मौका भी मिल गया है. यह मौका भी उन्हें तब मिला है, जब पिछले कुछ समय से उनका करियर कुछ ख़ास नहीं चल रहा है. पिछले साल प्रियंका की दो फिल्में सफल रही थीं- फ़ैशन और दोस्ताना.

उसके बाद उनकी एक भी ऐसी फिल्म नहीं आई है, जिसे वह याद रखना चाहें. जबकि प्रतिभा में वह कई सफल हीरोइनों से आगे ठहरती हैं, लेकिन क़िस्मत में पीछे छूट जाती हैं. दूसरे, रोज़ आ रहीं नई-नई हीरोइनों ने भी उनके लिए चुनौतियां बढ़ा दी हैं. ऐसे में यशराज बैनर की फिल्म मिलना उनके लिए किसी वरदान से कम नहीं है. फिल्म के नाम का ख़ुलासा अभी तक नहीं हुआ है, लेकिन उसमें यश चोपड़ा के छोटे बेटे उदय चोपड़ा भी हैं.

बहरहाल, पिछले साल दोस्ताना में वह भी बिकनी में आ गई थीं. अब देखना है कि यशराज बैनर उन्हें किस तरह पेश करता है. जहां तक यशराज बैनर की बात है, तो बॉलीवुड में महिलाओं को सबसे अधिक सम्मान और सलीके से वही पेश करता है.

लौट के प्रीति घर को आई

अब फिर प्रीत न करने की क़सम के साथ प्रीति ज़िंटा परदेस से लौट आई हैं. वह फ़िलहाल अपने घर वालों के साथ ही समय काट रही हैं. अधिकतर बातचीत नज़दीकी दोस्तों और रिश्तेदारों से ही कर रही हैं. इस बातचीत में वह पिछले दो सालों में बिताए गए लम्हों को उस तरह भूलना चाहती हैं, जैसे कोई बच्चा काग़ज़ पर लिखे को रबर से मिटाने में लगा रहता है. वह अपने मूल बिज़नेस पर फिर से लौट आई हैं. आईपीएल को फ़िलहाल उस नेस वाडिया के हिस्से छोड़ दिया है, जिसके साथ कभी सोचा था-एक महल हो सपनों का. बॉम्बे डाइंग वाले नेस वाडिया के साथ सारे रिश्तों पर उन्होंने अंतिम रूप से विराम लगा दिया है. पटरी से उतर गए फिल्मी करियर में नई जान फूंकना चाहती हैं. लेकिन वक़्त है कि जैसे यहां भी साथ न देने पर आमादा है. शाइनी आहूजा के साथ एक फिल्म अधूरी थी. उनके जेल में रहने से उसे भी पूरा नहीं करा सकतीं. यशराज जैसे बैनर जो कभी अपने थे, उनके पास प्रीति के लिए अभी कोई काम नहीं है. मंदी की मार से बड़े बजट की कोई फिल्म भी अभी तुरंत फ्लोर पर जाने वाली नहीं है. ऐसे में प्रीति और कुछ नहीं तो कोई अच्छी पटकथा तो लिख ही सकती हैं. कहते भी हैं कि प्रेम और पीड़ा किसी को भी संवेदनशील बना देती है. प्रीति तो पहले से संवेदनशील रही हैं. तो फिर देर किस बात की!

शेखर का नया अंदाज़

चुनावी मैदान में शिकस्त खाकर शेखर सुमन फिर अपनी दुनिया में लौट आए हैं. वही छोटे पर्दे की दुनिया. इसलिए कि बड़े पर्दे ने उन्हें अवसर तो दिया, लेकिन वह नाम नहीं दिया जिसके हक़दार थे. इसे ग्रीक ट्रेजेडी की कहा जाएगा कि बॉलीवुड में लोग अब उन्हें कंगना रानाउत के पूर्व प्रेमी के पिता के नाम से भी बुलाने लगे हैं. बहरहाल, छोटे पर्दे पर अब वह नए रंग-रूप में आएंगे. यानी एंकर या जज की भूमिका में नहीं दिखेंगे. वैसे तो वे कई किरदार निभा चुके हैं, जैसे लंदन का फ़ैशन डिज़ाइनर, जालंधर का टैक्सी ड्राइवर, आपका लोकप्रिय खिलाड़ी, भिखारी, पुलिसवाला, कॉरपोरेट हस्ती वग़ैरह. लेकिन अबकी मामला ज़रा कुछ और है. इस बार वह टीवी पर नया कॉमेडी शो लेकर आ रहे हैं. नाम है-टेढ़ी बात.

दूर की सोच रही हैं अविका

चैनलों की भीड़ में कलर ने लंबी छलांग यक़ीनन बालिका वधू के सहारे ही लगाई है. लेकिन नटखट बालिका वधू आनंदी यानी अविका गौर निजी जीवन में गंभीर हो गई हैं. इतना कि वह अब कुछ बड़ा करना चाहती हैं. छोटे पर्दे की छोटी नायिका को बड़े पर्दे का आकर्षण लुभाने लगा है. उन्हें लगता है सीरियल की तुलना में वह फिल्म इंडस्ट्री में लंबे समय तक बनी रह सकती हैं. तभी उन्होंने अनुपम खेर के अभिनय प्रशिक्षण संस्थान में दाख़िला लेने का सोचा है. ऐसा नहीं है कि वह टीवी को बाय-बाय करने वाली हैं. दरअसल उन्हें पता है कि एपीसोड की तरह वह भी तो बढ़ती जा रही हैं. इसलिए कुछ ही सालों में उन्हें बड़ी लड़की की विभिन्न तरह की भूमिका भी निभानी पड़ेगी. बालिका वधू में तो छोटी बच्ची की चंचलता दिखानी थी, जो वैसे भी वह हैं ही. लेकिन बड़ी बनने के बाद अभिनय में विविधता दिखाने के लिए प्रशिक्षण तो चाहिए ही. इसके लिए भला अनुपम अंकल से बेहतर कौन सकता था.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

कृपया अपने सबस्क्रिप्शन चेक अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के नाम पर अपने नाम और पूरे पते के साथ यहां भेजें : (गैनन) के-2, दूसरी मंज़िल, चौधरी बिल्डिंग, मिडिल सर्किल, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली -110001

वार्षिक शुल्क : 1000 रु.